(ये पुस्तिका २००९ में साउथ एशियन डायलॉग ऑन इकोलॉजिकल डेमोक्रेसी – सैडेड- के लिए लिखी गई थी। इसे हम यहां साभार प्रस्तुत कर रहे हैं।)

बिहार में बाढ़ः क्या है समाधान?

Flood Scourge in Bihar: Is There Any Solution?

विशेष लेख

5 जून 2009

विजय कुमार
संयोजक, जन आंदोलनों का राष्ट्रीय समन्वय (NAPM), बिहार.
मोबाइल- 09431068555
,ईमेल- vijayniwas@rediffmail.com

सत्येंद्र रंजन
स्वतंत्र पत्रकार
मोबाइल- 981199269
ईमेल- satyendra.ranjan@gmail.com

Floods are old nemesis of north Bihar. The geographical situation of the state is such that saving it from the flood scourge may not be possible. Many rivers originating from the Himalayas and flowing through Nepal come down to this part of Bihar. This source of fresh water could be a boon for the state, but during the monsoon these rivers become troublesome for the people of the area. Koshi is one such river that has been a source of misery for the people due its changing course.

Experts say that floods are a natural phenomenon that could not be stopped. It is better that human beings learn to live floods. But in the influence of industrial civilization, it was thought that with rivers could be controlled by technological know-how. However, the real experiences of last 5-6 decades have destroyed this myth. The hope of saving the people from furies of flood by erecting dams and embankments has proved baseless.

Whenever we talk about floods in Bihar, we must keep in mind that it is a cause of hunger in the state, but it's not the only reason of it. During draught or even in normal times starvation like situations keep cropping up in the state. Actually, biggest reason of hunger is corruption. For the political leaders, contractors and middle-men, floods and draughts have become a profitable industry. We have discussed all these aspects of the problem in the first chapter of the monograph.

The second chapter is focused on Koshi River. Its natural structure, its historical conditions and dreadful floods of August 2008 is discussed in this chapter. Breach in the embankment at Kusaha in Nepal was the cause of the flood, but why embankment breached and who were responsible for it are the important question which have not been answered yet. People of the affected areas and many mass organizations blame government and local administration for it and if they are right then the govt. and administration should be directly considered responsible for the havoc floods let loose on millions of people there.

Koshi floods of August 2008 sharpened the questions of usefulness of dams and embankments in overall strategy of controlling floods and saving the people in affected areas. We have tried to go into depth of these questions and have discussed the logics for and against the dams and embankments and politics behind them. This forms the third chapter of the monograph.

Koshi floods exposed the government's negligence in matters of rescue and relief. It again came to light that governments are not ready to learn from past mistakes and even the instruments of flood control they believe in, they don't follow them with full ability and commitment. Political parties and leaders always care more for their vested interests than affected population. Hence, in the fourth chapter we have taken up the issue of floods and governance. The issue of governance also has an international dimension. Therefore in fourth chapter itself we have tried to go into the issues of flood and flood management in the context of India-Nepal relationship. It must be recalled that certain experts are of the view that floods of August 2008 could become such a big issue only because of Nepal aspect of it. This gave it an international dimension. We have tried to look into the relevance of old policies of flood control in the context of new political circumstances in Nepal.

As we see it, flood is a complex issue in Bihar. There are many technical issues are related to it, it has an international dimension, and govt. negligence as well as web of corruption has been making it more severe. Then what is the solution. Mass organizations of Bihar and pro-people experts have thought over it and based on their experiences they have prepared some demands. If these demands could be accepted and implemented, people may get relief from the scourge of floods. These demands include immediate as well as medium term and long term steps. Long term steps are essentially related to our vision regarding floods and nature. It's a topic of serious and long debate, but we can't escape from indulging in this discourse. In our Fifth Chapter we have looked into the issues of this debate.

However, it's not enough that we just mention some preventive measures and present a different vision of our own on this subject. When there are strong vested interests are active in favour of old policies, governments won't accept new suggestions, only because they sound more realistic and logical. For that governments will have to be pressurized and it could be done only when people come on streets. Fact of matter is that, we need mass mobilization at large scale so that people's politics may begin and governments are forced to listen to the new wisdom. But the moot question is who will start this politics or what's the point of beginning? In the Sixth Chapter, issues related to this question have been discussed.

This monograph has been written on the basis of experiences of many mass organizations, their pamphlets, their demands, write-ups published in different reputed journals of the country, newspaper reports and comments, and interviews of experts. The list of source materials is given at the end of the monograph.

सार-संक्षेप

उत्तर बिहार से बाढ़ का नाता पुराना है। उस इलाके की भौगोलिक स्थिति ऐसी है कि उसे बाढ़ से बचाया नहीं जा सकता। हिमालय से निकलने वाली कई नदियां नेपाल से होते हुए बिहार के इस इलाके में उतरती हैं। ताजा जल का यह स्रोत वरदान भी हो सकता है, लेकिन बरसात में ये नदियां परेशानी का सबब भी बनती रही हैं। कोशी एक ऐसी नदी है, जो अपनी चंचल धारा की वजह से कुछ ज्यादा ही कहर ढाती रही है।

जानकार कहते हैं कि बाढ़ एक कुदरती परिघटना है, जिसे रोका नहीं जा सकता। मनुष्य के हित में यह है कि वह बाढ़ के मुताबिक जीना सीख ले। लेकिन जब तकनीक से प्रकृति को जीत लेने का भरोसा इंसान में कुछ ज्यादा ही भर गया तो नदियों को नाथ कर बाढ़ रोकने के तरीके अपनाए गए। बहरहाल, पिछले पांच-छह दशकों के अनुभवों ने यह भरोसा तोड़ दिया है। बांध और तटबंधों के जरिए बाढ़ रोकने की उम्मीद निराधार साबित हो गई है।

जब बिहार के संदर्भ में बाढ़ की बात होती है, तो यह ध्यान में रखना चाहिए कि इस गरीब राज्य में भुखमरी की यह एक बड़ी वजह जरूर है, लेकिन यह सिर्फ एक वजह है। सूखा और सामान्य स्थितियों में भी भुखमरी के हालात पैदा होते रहे हैं। इसका सबसे खास कारण भ्रष्टाचार है। भ्रष्टाचार ने बाढ़ और सूखा राहत को नेताओं, ठेकेदारों और बिचौलियों के लिए एक फायदेमंद उद्योग बना रखा है। इन सभी पहलुओं पर इस पुस्तिका के **पहले अध्याय** में नजर डाली गई है।

दूसरा अध्याय कोशी पर केंद्रित है। नदी की खास बनावट, उसकी ऐतिहासिक स्थिति और अगस्त 2008 में आई भयानक बाढ़ पर। यह बाढ़ नेपाल में कुसहा में तटबंध के टूटने से आई, लेकिन तटबंध क्यों टूटा और इसके लिए कौन जिम्मेदार है, इन सवालों के जवाब अब तक नहीं मिले हैं। आम लोग और जन संगठन इसके लिए सीधे तौर पर सरकार और प्रशासन को दोषी मानते हैं। जाहिर है, लाखों लोगों पर जो आफत आई, उसकी जिम्मेदारी भी उन पर ही है। दूसरे अध्याय का यही विषय है।

कोशी में अगस्त 2008 की बाढ़ ने तटबंधों और बांधों की उपयोगिता पर सवाल को और गहरा कर दिया। तटबंधों के पक्ष और विपक्ष में क्या तर्क हैं और इनके पीछे कैसी राजनीति है, इस पर निगाह डालने की कोशिश हमने **तीसरे अध्याय** में की है।

कोशी की बाढ़ ने सरकारी लापरवाही को बेनकाब कर दिया। पूरी स्थिति पर ध्यान दिया जाए यह साफ हो जाता है कि सरकार अतीत की गलतियों से सीखने को बिल्कुल तैयार नहीं है, साथ ही वह बाढ़ नियंत्रण के जिन उपायों में यकीन करती है उस पर भी अमल में चुस्ती नहीं बरतती। राजनीतिक दल और नेता जनता से ज्यादा अपने निहित स्वार्थों का ख्याल करते हैं। **चौथे अध्याय** में हमने बाढ़ और राजकाज से उसके रिश्तों पर नजर डाली है। राजकाज से ही जुड़ी बात इस मसले का अंतरराष्ट्रीय आयाम है। इसलिए इसी अध्याय में कोशी की बाढ़ और बाढ़ के प्रबंधन से जुड़े भारत और नेपाल के पहलू पर भी गौर किया गया है। दरअसल, कई विशेषज्ञ तो यह मानते हैं कि अगस्त 2008 की बाढ़ इसलिए इतना बड़ा मुद्दा बन पाई, क्योंकि उससे नेपाल का पहलू जुड़ा था। इससे बाढ़ को एक अंतरराष्ट्रीय आयाम मिल गया। नेपाल की नई परिस्थितियों के बीच बाढ़ नियंत्रण की पुरानी नीतियां आज कहां खड़ी हैं और इनका क्या भविष्य है, हमने इसे समझने की कोशिश की है।

बिहार में बाढ़ का मामला पेचीदा है। इससे कई बुनियादी तकनीकी सवाल जुड़े हुए हैं, इसका एक अंतरराष्ट्रीय पहलू है, सरकारों की अनदेखी और भ्रष्टाचार के तंत्र ने हालात को और गंभीर बना रखा है। तो आखिर समाधान क्या है? बिहार के जन संगठनों और जन-पक्षीय रुझान रखने वाले जानकारों ने इस पर काफी सोच-विचार किया है। अपने अनुभवों के आधार पर उन्होंने कई मांगे तैयार की हैं। ये मांग राज्य की जनता को बाढ़ से राहत दिलाने के उपाय सुझाते हैं। इनमें कुछ फौरी कदम हैं, जिन्हें तुरंत उठाया जाना चाहिए, कुछ मध्यम अवधि के कदम हैं और कई दीर्घकालिक कदम। दीर्घकालिक कदमों का संबंध नजरिए से है। बाढ़ और कुदरत को लेकर कैसा नजरिया हो, यह गंभीर बहस का विषय है। लेकिन इस बहस को अब जरूर चलाया जाना चाहिए। **पांचवें अध्याय** में इस मसले के इस पहलू पर गौर किया गया है।

लेकिन बात सिर्फ यह नहीं है कि कुछ उपायों की चर्चा कर ली जाए या कोई नया नजरिया पेश कर दिया जाए। जब पुरानी नीतियों और उपायों के पीछे बड़े-बड़े निहित स्वार्थ हो, तो सुझाव चाहे जितने अच्छे, यथार्थ और तार्किक हों, सरकारें उन्हें स्वीकार करने को तैयार नहीं होंगी। इसके लिए सरकारों को मजबूर करना होगा। ऐसा तभी हो सकता है जब जनता जागरूक हो और अपनी मांगों को लेकर दबाव बनाने के रास्ते पर उतरे। दरअसल, जरूरत एक बड़ी जन-गोलबंदी की है, जिससे ऐसी लोक-राजनीति शुरू हो जिसके आगे सरकारों को भी झुकना पड़े। लेकिन सवाल है कि यह राजनीति कौन करेगा

और कहां से इसकी शुरुआत हो? इस मसले से जुड़े संभवतः इस सबसे अहम पहलू पर **छठे अध्याय** में चर्चा की गई है।

यह पुस्तिका बहुत से जन संगठनों के अनुभवों, उनके पर्चों, उनकी मांगों, देश की मशहूर पत्रिकाओं में छपे विशेषज्ञों के लेखों, अखबारी रपटों एवं टिप्पणियों और जानकारों से बातचीत के आधार पर तैयार की गई है। जिन संदर्भों का इसमें सहारा लिया गया है, उसकी सूची पुस्तिका के अंत मे है।

1- बिहार और बाढ़- 9

2- कोशी में बाढ़ की पृष्ठभूमि- 15

3- क्या बांध और तटबंध हैं उपाय 21

4- बाढ़ की समस्या और राजकाज की चुनौतियां 26

5- समस्या का हल 31

6- कैसे होगी जनता की राजनीति 39

अध्याय-1. बिहार और बाढ़

बाढ़ बिहार की एक बड़ी समस्या है। बिहार की गरीबी की एक वजह हर साल बाढ़ से होने वाली तबाही भी मानी जाती है। उत्तर बिहार का बड़ा इलाका हर साल पानी में डूबता है, लेकिन हर साल यह बाढ़ उतनी बड़ी खबर नहीं बनती। कई जानकारों का कहना है कि 2008 में कोशी की बाढ़ इसलिए उतनी बड़ी खबर बन पाई, क्योंकि एक तो नेपाल का पहलू उससे जुड़ा होने की वजह से यह एक अंतरराष्ट्रीय मसला बन गया, और दूसरे लोकसभा चुनाव करीब होने की वजह से राजनीतिक दलों को इसमें सियासी मुद्दा मिलने की संभावना नजर आई।

वैसे बिहार की समस्या सिर्फ कोशी नहीं है। अगर बिहार को राहत मिलनी है तो यह तभी मिलेगी, जब उत्तर बिहार में बाढ़ से निपटने की एक संपूर्ण रणनीति बनाई जाए। उत्तर बिहार का इलाका भारत-नेपाल सीमा के मध्य पूर्वी हिस्से, पश्चिम में घाघरा नदी और पूरब में महानंदा नदी के बीच में बसा है। यह इलाका कई बड़ी नदियों का जल ग्रहण क्षेत्र है। ये नदिया हैं- घाघरा, बूढ़ी गंडक, बागमती, अधवरा समूह की नदियां, कमला बलान, कोशी और महानंदा। यह इलाका तकरीबन 56 लाख हेक्टेयर में फैला है और विशाल गांगेय क्षेत्र का हिस्सा है। इलाके की नदियां आगे चल कर गंगा में मिल जाती हैं। इनमें से अधिकांश नदियां हिमालय से निकलती हैं और नेपाल में बहते हुए उत्तर बिहार पहुंचती हैं। बिहार में अक्सर ये नदियां, खासकर बरसात में धारा बदलती रहती हैं। इनका प्रबंधन आज भी एक बड़ी चुनौती बना हुआ है।

बरसात में मैदानी और हिमालय के पहाड़ी इलाकों के जल ग्रहण क्षेत्रों में जोरदार बारिश होने पर इन नदियों का पानी बढ़ने लगता है। अगर बंगाल की खाड़ी में हवा का दबाव बनता है, तो उसके असर होने वाली बारिश का असर भी इन नदियों के जल स्तर पर पड़ता है। पानी बढ़ने के साथ बाढ़ की हालत बन जाती है और तटबंधों के टूटने की खबर आने लगती है। नतीजा बड़े इलाके के डूब जाने के रूप में सामने आता है। इस आपदा से लाखों लोग बेघर हो जाते हैं, फसलें तबाह हो जाती हैं, और बड़ी संख्या में पशु मारे जाते हैं। एक अनुमान के मुताबिक उत्तर बिहार की ये नदियां हर साल 217 क्यूबिक मीटर पानी, जिसमें 43 करोड़ टन गाद होती है, गंगा में पहुंचाती हैं। गंगा नदी से जो पानी फरक्का तक पहुंचता है, उनमें 47 फीसदी पानी इन्हीं नदियों से आया हुआ होता है। गंगा जितना गाद फरक्का पहुंचाती है, उसका 59 फीसदी हिस्सा इन्हीं नदियों से आता है।

यहां यह गौरतलब है कि ये नदियां ताजा जल का बहुमूल्य स्रोत हैं। जल स्रोतों के बारे में संयुक्त राष्ट्र के अध्ययन से दुनिया भर में जब चिंता की लकीरें गहरी हो गई हैं, तब इन नदियों के बारे में गंभीरता से सोचने की जरूरत और शिद्दत से महसूस की जा रही है। संयुक्त राष्ट्र के इस अध्ययन के मुताबिक आने वाले वर्षों में पीने और औद्योगिक उपयोग के लिए ताजा जल की भारी कमी हो जाएगी। बिगड़ते पर्यावरण और बढ़ती आबादी की वजह से यह समस्या लगातार गंभीर हो रही है। एक अनुमान के मुताबिक धरती पर कुल जितना पानी मौजूद है, उसका सिर्फ 0.014 फीसदी ही ताजा जल के स्रोतों से आता है। उत्तरी बिहार की नदियां अनुमानतः 4 खरब 12 अरब क्यूबिक मीटर पानी उपलब्ध कराने में सक्षम हैं। इसलिए यह जरूरी है कि इस जल संसाधान के सरंक्षण और इसके सही उपयोग की वाजिब नीतियां बनाई जाएं, ताकि वर्तमान एवं भावी पीढ़ियों के हित सुरक्षित हो सकें। *(तथ्य एमबी वर्मा के आलेख से)*

बहरहाल, यही नदियां बरसात के मौसम में कहर बन जाती हैं। उत्तर बिहार हर साल बाढ़ से प्रभावित होने वाला इलाका है। गौरतलब है कि भारत दुनिया में बाढ़ से सबसे ज्यादा प्रभावित होने वाले देशों में है। दुनिया भर में बाढ़ से जितनी मौते होती हैं, उसका पांचवां हिस्सा भारत में होता है। तकरीबन 4 करोड़ हेक्टेयर इलाका यानी भारत की कुल भूमि का आठवां हिस्सा ऐसा है, जहां बाढ़ आने का अंदेशा रहता है। दुनिया में जो इलाके बाढ़ से सबसे बुरी तरह प्रभावित होते हैं, उनमें गंगा के मैदानी इलाके भी हैं। बाढ़ इन इलाकों के बाशिंदों के लिए लगभग हर साल दुख और विनाश की कथा लिख जाती है। उपलब्ध आंकड़ों के मुताबिक पिछले पांच दशकों में भारत में बाढ़ नियंत्रण पर 27 खरब रुपए खर्च किए गए, लेकिन इस दौरान बाढ़ से हर साल होने वाली क्षति 40 गुना बढ़ गई। इसी अवधि में हर साल बाढ़ से प्रभावित होने वाले इलाकों में 1.5 फीसदी का इजाफा हुआ। *(जियोग्रैफी एंड यू, जुलाई-अगस्त 2008)*

जानकारों के मुताबिक बाढ़ का आना एक कुदरती परिघटना है, जिसका नदी के प्राकृतिक रूप को बचाए रखने में अहम योगदान है। एक खास अंतराल पर नदी में ज्यादा पानी आएगा, यह बात हमें मान कर चलना चाहिए। बाढ़ दरअसल नदी के बनने और इसके कायम रहने की प्रक्रिया का हिस्सा है। बाढ़ खतरनाक इसलिए हो जाती है, क्योंकि लोग उन इलाकों में रहने लगते हैं, जहां तक एक खास मौसम और स्थिति में नदी का पानी पहुंचता है। इन्हीं लोगों को बचाने के लिए बाढ़ नियंत्रण के उपाय अपनाए जाते हैं। लेकिन यह तो तय है कि बाढ़ नियंत्रण के उपाय प्रकृति में इंसान का हस्तक्षेप है।

यह भी एक तथ्य है कि पिछले तीन दशकों में भारत में सबसे ज्यादा बाढ़ उत्तर बिहार के मैदानी इलाकों में ही आई है। इसका मतलब यह हुआ कि वहां बाढ़ नियंत्रण के उपाय या तो कारगर नहीं हुए या थोड़े समय के लिए कारगर होने के बाद नाकाम हो गए। ऐसे में उत्तर बिहार और असल में पूरे देश के अनुभव के आधार पर यह जरूर स्वीकार कर लिया जाना चाहिए कि बाढ़ नियंत्रण की दोषमुक्त या संपूर्ण व्यवस्था करना लगभग असंभव है। बाढ़ को संभालने के जो भी कार्यक्रम बनाए जाएं, यह बात जरूर ध्यान में रखी जानी चाहिए कि इनसे लोगों में सुरक्षा का झूठा भरोसा भरने की कोशिश ना हो।

जानकारों का सुझाव है कि बाढ़ नियंत्रण के कार्यक्रम बनाते वक्त इन बातों पर जरूर गौर किया जाना चाहिए: 1- बाढ़ नियंत्रण कार्यक्रम स्थानीय स्थितियों के मुताबिक हो, 2- इस पर जितनी लागत आए उसकी तुलना में उससे लाभ ज्यादा हो, और 3- बाढ़ नियंत्रण के प्रतिकूल प्रभावों से बचा जाए। बाढ़ नियंत्रण के प्रतिकूल प्रभावों से मतलब वैसे असर से है, जो इन कार्यक्रमों के वजह से देखने को मिलता है। मसलन, नदी के रास्ते में बदलाव, किसी इलाके में पानी जमा होना, और बाढ़ की आशंका वाले इलाकों में बढ़ोतरी।

बाढ़, सुखाड़ और भुखमरी

आखिर बिहार की पूर्व सरकारों और राजनीतिक दलों ने पहले भी कोई सबक नहीं सीखा था। इसीलिए बिहार गरीबी और दुर्दशा का पर्याय बना हुआ है। इसके पीछे प्राकृतिक आपदाओं, खासकर बाढ़ की बड़ी भूमिका रही है। कुछ अनुमानों के मुताबिक राज्य की एक तिहाई आबादी राज्य के बाहर जाकर रोजी-रोटी कमाती है। मजबूरी में होने वाले इस पलायन की पीड़ा को समझने की कभी कोशिश नहीं की गई। अपनी जमीन से उखड़ कर जाना, अपने प्रिय लोगों से बिछोह, अपनी संस्कृति और माहौल से कट कर दूसरी जगह जाकर जीने की विवशता- बिहार के लाखों लोगों की कहानी है। आखिर इसके लिए कौन जिम्मेदार है? क्या राजनीतिक दल इस बात से इनकार कर सकते हैं कि बिहार में बाढ़ से पैदा हुई समस्याएं उनके आपराधिक कुशासन और कुप्रबंधन का परिणाम है?

इस मुद्दे और प्राकृतिक आपदा से जुड़े इस पहलू पर गंभीरता से विचार-विमर्श की जरूरत है। बिहार में दशकों से सक्रिय रहे सामाजिक और राजनीतिक कार्यकर्ता इस तरफ सरकारों का ध्यान खींचने की कोशिश करते रहे हैं, लेकिन सत्ताधारी और विपक्षी दलों के लिए यह सवाल आरोप-प्रत्यारोप का एक विषय होने से ज्यादा कुछ नहीं रहा है। सत्ता में चाहे कोई रहे, इससे हालात नहीं बदलते। कोशी की बाढ़ के बाद जब ये कार्यकर्ता पटना

में बाढ़ और भूख पर संवाद के लिए इकट्ठे हुए तो बिहार की विकट स्थिति कुछ ज्यादा साफ हुई। यहां हम उस संवाद में सामने आए अहम मुद्दे पेश कर रहे हैं-

* उत्तर बिहार में भूख की स्थिति बाढ़ और दक्षिण बिहार में सूखे से जुड़ी हुई है। लेकिन इस सवाल पर बिहार में सभी चुप हैं। अगर पिछले पांच साल में विधानसभा में हुई चर्चाओं पर गौर किया जाए तो यह सामने आता है कि भूखमरी के सवाल पर न तो कोई चर्चा हुई है, और ना ही कोई सवाल उठाया गया है। राजनीति, खासकर चुनावी राजनीति में भुखमरी कोई मुद्दा नहीं है।

2008 में वैशाली जिले के वान्थु, गोरइया और परवारी गांव के बारे में एक अखबार ने खबर छापी कि दो मुसहर भाई भूख के कारण मर गए। जब 'वादा ना तोड़ो' अभियान की तरफ से वहां सर्वेक्षण किया गया। सर्वे में गए लोगों ने महसूस किया कि वहां हालात इतनी खराब है कि एक क्या सभी लोग भुखमरी का शिकार हो सकते हैं।

लोग वहां आलू की जड़ और उसकी गुठली को निकाल कर खाने को मजबूर थे। जब वो लोग आलू की जड़ को उबाल रहे थे तब इतनी ज्यादा बदबू आ रही थी कि उसके सामने खड़ा रहना भी कठिन था।

हकीकत यह है कि भुखमरी का एक कारण बाढ़ है, लेकिन बाढ़ न आने की स्थिति में भी भुखमरी होती है। यानी इसके कुछ दूसरे कारण भी हैं। लेकिन राजनीतिक दल इस मुद्दे पर असंवेदनशील हैं।

इसलिए सामाजिक कार्यकर्ता यह जरूरत महसूस करते हैं कि भूख की समस्या को आज की राजनीति के केंद्र में लाना चाहिए। बाढ़ से उत्पन्न भुखमरी की स्थिति को भी राजनीति में लाना चाहिए। अगर संसदीय राजनीति में भूख की समस्या का हल नहीं हो सकता तो आखिर यह समस्या कैसे हल हो सकती है, इस पर चर्चा होनी चाहिए।

* भुखमरी बाढ़ और सूखे दोनों ही स्थितियों होती है। इसका सबसे बड़ा कारण दरअसल भ्रष्टाचार है। अगर किसी इलाके में बाढ़ आ जाए तो सरकार और दूसरे स्रोतों से मदद पहुंचाई जाती है, लेकिन वह जरूरतमंदों तक नहीं पहुंच पाती। नदियों के पानी को रोकने के लिए पैसे तो मिलते हैं, लेकिन पदाधिकारी उससे जरूरी काम नहीं कराते, खुद खा जाते हैं। जब तक ऐसा होता रहेगा, भुखमरी बनी रहेगी।

* बागमती नदी पर तटबंध बनाने के लिए जो इंजीनियर निरीक्षण के लिए आए थे, उन्होंने रिपोर्ट दी थी कि बागमती नदी पर तटबंध नहीं बनाया जा सकता। लेकिन बागमती पर तटबंध बनाया गया। सबसे पहले स्थानीय नेताओं ने अपने लोगों को ठेके दिलवाए, फिर कमीशन लिया। यानी जब भी बांध या तटबंध बनने की योजना बनती है तो भ्रष्टाचार शुरू हो जाता है। नेता बीडीओ और कलेक्टर से कमीशन लेते हैं, यहां तक कि उन्होंने इंदिरा आवास योजना में भी कमीशन लिया।

सरकारी अधिकारियों और नेताओं के बीच एक बिचौलिया तबका तैयार हो गया है। बाढ़ इन सबके लिए एक उद्योग है। यह उद्योग चलता रहे इसके लिए वो हमेश किसी न किसी समस्या को जन्म देते रहते हैं। बागमती का बांध टूटने से जगह-जगह गड्ढे बन गए, दूर-दूर तक रेत फैल गई, लेकिन इसकी जांच के लिए कोई टीम नहीं आई। ऐसे मामलों में कोई पहल ना होने से लोग खेती बाड़ी छोड़ कर दूसरे राज्यों में पलायन करते हैं। इस तरह बाढ़ और भुखमरी एक दूसरे से जुड़े हुए हैँ।

* तटबंध बने या नहीं, इस पर आज भी चर्चा जारी है। सामाजिक कार्यकर्ताओं ने राय जताई कि बिहार और देश के लगभग 99 फीसदी बाढ़ विशेषज्ञों की रोजी-रोटी इसी मुद्दे से चल रही है। सरकार से ज्यादा ये लोग बाढ़ के लिए जिम्मेदार हैं। बाढ़ के मुद्दे पर काम करने वाले जन संगठनों, आंदोलनकारियों से पूछ लिया जाए, उसका अध्ययन किया जाए तो आपको पता चलेगा कि सरकार द्वारा की गई गलतियों के लिए भी यही विशेषज्ञ जिम्मेदार हैं। इन लोगों ने बाढ़ जैसे सवाल पर बहस से आम जनता को कभी नहीं जोड़ा। बहस जितनी तकनीकी होगी, आम आदमी उससे उतना कटा रहेगा। असली सामाजिक कार्यकर्ता उससे कटे रहेंगे।

सामाजिक कार्यकर्ताओं की यह राय बाढ़ और उसके प्रबंधन से जुड़े कई पहलुओं की तरफ इशारा करती है। इससे यह उभर कर सामने आता है कि बाढ़ सिर्फ एक समस्या नहीं है, बल्कि यह भुखमरी जैसी घोर समस्या की एक वजह भी है। इससे दूसरी बात यह उभर कर सामने आती है कि बाढ़ महज एक प्राकृतिक आपदा नहीं है, बल्कि यह एक राजनीतिक सवाल है। जब तक इस सवाल को मुख्यधारा राजनीति के केंद्र में नहीं लाया जाएगा, बाढ़ प्रबंधन की जन पक्षीय नीतियां नहीं बन पाएंगी। तीसरी बात यह है कि बाढ़ से संबंधित बहस महज तकनीकी नहीं है, बल्कि इसके मानवीय और जन साधारण से जुड़े सवाल भी संबंधित हैं। बाढ़ प्रबंधन के वो तरीके शायद अपना मकसद हासिल नहीं

कर सकें, जिन्हें अपनाने से पहले जनता की राय नहीं ली गई हो। इसलिए यह अब बेहद जरूरी हो गया है कि बाढ़ नियंत्रण एवं प्रबंधन के बारे में एक समग्र नजरिया अपनाया जाए, जिसमें सरकार, वैज्ञानिक और तकनीकी लोगों के साथ-साथ आम जन के ख्यालात भी अहमियत रखते हों।

अध्याय-2 कोशी नदी में बाढ़ की पृष्ठभूमि

कोशी जो नेपाल और भारत के एक बहुत बड़े इलाके पर पसरी हुई है। यानी यह एक ऐसी नदी है, जो दो देशों में बहती है। इसका जलग्रहण क्षेत्र 95,646 वर्ग किलोमीटर में फैला हुआ है। यह इलाका माउंट एवरेस्ट और कंजनजंघा से होते हुए गंगा नदी तक जाता है। लेकिन गंगा में मिलने से पहले कोशी बिहार की कई प्रमुख नदियों, मसलन-कमला, बागमती, बूढी गंडक और भूतही बलान को खुद में समेट लेती है। चतरा में उतरने के पहले कोशी नदी नेपाल की तराई में 48 किलोमीटर का सफर तय कर चुकी होती है। फिर यह उत्तर बिहार में 15 धाराओं में बंट जाती है। पिछले दो सौ साल में यह नदी उत्तर बिहार में पूरब से पश्चिम की तरफ 150 किलोमीटर से ज्यादा खिसकी है।

नेपाल में सात बड़ी नदियां कोशी में मिलती हैं, इसलिए नेपाल में इसे सप्त कोशी कहा जाता है। अपने स्रोत से चलकर गंगा में मिलने तक कोशी 729 किलोमीटर की दूरी तय करती है। इसमें से 260 किलोमीटर का इलाका भारत में है।

कोशी में पानी का औसत प्रवाह 1,564 क्यूबिक मीटर प्रति सेकंड है। बाढ़ के समय यह प्रवाह 18 गुना बढ़ जाता है। उपलब्ध आंकड़ों के मुताबिक कोशी में सबसे भयंकर बाढ़ अगस्त 1968 में आई थी, जब जल प्रवाह 25,878 क्यूबिक मीटर प्रति सेकंड तक पहुंच गया था। इसके पहले एक और भयंकर बाढ़ अगस्त 1954 में आई, जब इसमें 24,200 क्यूबिक मीटर प्रति सेकंड का जल प्रवाह देखने को मिला था।

इंजीनियर और बाढ़ विशेषज्ञ दिनेश कुमार मिश्र के मुताबिक, “कोशी की विभिन्न धाराओं के नक्शे 18वीं सदी के प्रारंभ से उपलब्ध हैं। 15 अलग-अलग धाराओं में बहने वाली इस नदी के एक धारा से दूसरी धारा में बहने का कारण उसमें आने वाली गाद थी। ऐसी नदी को एक धारा में बहाने का दुस्साहस 1950 के दशक में हमारे राजनीतिज्ञों और इंजीनियरों ने किया। जिस नदी का पानी और उसकी गाद 15 धाराओं में किसी न किसी मात्रा में बहती थी, वह एक धारा में सीमित हो गई। इस मूर्खता का परिणाम यह हुआ कि बहुत सी धाराओं में बहने वाली नदी की सिर्फ एक धारा के बीच सारा पानी और सारी गाद बहने लगी। जो नदी पहले से ही शेर थी, वह तटबंधों के बीच बंध जाने के बाद पहले से कहीं ज्यादा ताकतवर हो गई, क्योंकि अब उसकी केवल एक धारा की पेटी का स्तर बाकी सभी धाराओं और साथ की जमीन से कहीं ज्यादा ऊपर हो गया। ऐसी नदी स्थिर नहीं रह सकती थी।”

कोशी में हर साल बरसात में पानी बढ़ता है। जून से सितंबर तक मानसून के मौसम में कोशी के जल ग्रहण क्षेत्र में तेज बारिश होती है, हालांकि यह हर साल एक जैसी हालत नहीं रहती। कोशी जल ग्रहण इलाके में बादल फटने की घटनाएं आम हैं, जिस दौरान एक दिन में 500 मिलीमीटर तक बारिश हो सकती है। जानकारों के मुताबिक जल ग्रहण क्षेत्र में दिखने वाला यह रुझान कोशी के अनोखे और खतरनाक व्यवहार का एक कारण है।

जैसाकि ऊपर कहा गया है, कोशी के अक्सर कहर ढाने का एक कारण उसके पानी में आने वाली गाद है। बादल फटने के दौरान बड़े पैमाने पर मलबा नदियों में आता है। पहाड़ में जमीन धंसने की घटनाएं आम तौर पर होती रहती हैं। इससे भी पानी और गाद नदी में आती है। ये सारी घटनाएं अचानक होती हैं और इतना वक्त नहीं होता कि संभावित बाढ़ के दायरे में आने वाले लोगों को चेतावनी दी जा सके।

पिछले साठ साल में हिमालय में ग्लेशियर पिघलने की रफ्तार तेज हुई है। इससे कई बार बर्फ पिघलने से बनने वाली झीलों में अचानक उफान आ जाता है। इससे तेज रफ्तार से पानी नदियों में पहुंचता है और इसके साथ ही पहुंचता है झीलों के टूटने से पैदा हुआ मलबा। जब इन नदियों की बाढ़ नीचे पहुंचती है, तो पानी और गाद खेतों और बस्तियों में तबाही मचा देते हैं। अध्ययनों से यह बात सामने आई है कि कोशी हर साल 12 करोड़ क्यूबिक मीटर गाद लाती है, जिनमें 95 फीसदी मानसून के दिनों में आता है। *(अजय दीक्षित, ईपीडब्लू, 7 फरवरी 2009)*

कुसहा पर पूर्वी कोशी तटबंध की टूट

कोशी का कहर अगस्त 2008 में बिहार के एक बड़े इलाके पर टूट पड़ा। कोशी को कभी बिहार का शोक कहा जाता था। जब यह नदी पूर्णिया जिले में बहती थी तब एक कहावत बड़ी चर्चित थी कि 'जहर खाओ, न माहुर खाओ, मरना है तो पूर्णिया जाओ।' इस नदी का यह स्वभाव था कि वह अपना रास्ता बदलती रहती थी। यह कब अपना रुख बदल लेगी, इसका अंदाजा लगाना मुश्किल होता था। इसलिए लोग इससे डरे रहते थे।

लेकिन यह तब की बात है, जब माना जाता था कि प्रकृति के कोप से बचना मुश्किल है। बाद में नदी के किनारे तटबंध बनाए गए और बाढ़ से लोगों को बचाने के इंतजाम किए गए। लेकिन 2008 में कोशी का विकराल रूप एक बार फिर देखने को मिला। और इसके साथ ही बाढ़ रोकने के लिए किए इंतजाम एक बार फिर सवालों के घेरे में आ गए। नदी

को बांधने की कोशिश में इंसान नाकाम रहा है, यह बात एक बार फिर जाहिर हो गई। बाढ़ 18 अगस्त 2008 को नेपाल में कुसहा तटबंध में दरार पड़ने से आई। इसका असर बिहार के 8 जिलों पर पड़ा। ये जिले हैं- सहरसा, सुपौल, मधेपुरा, पूर्णिया, अररिया, कटिहार, खगड़िया, नवगछिया (पुलिस जिला)। सरकारी आंकडों के मुताबिक 527 जानें गईं और 35 लाख ऊपर लोग इस तबाही का शिकार हुए। हालांकि कोशी इलाके में काम करने वाले कई जन संगठन मृतकों की संख्या साढ़े तीन हजार से 20 हजार तक मानते हैं। बाढ़ की वजह से लाखों लोग बेघर हो गए। लाखों लोगों की आजीविका चली गई। एक लाख छह हेक्टेयर जमीन पर खड़ी फसलें नष्ट हो गईं।

नुकसान इतने बड़े पैमाने पर हुआ कि केंद्र सरकार को कोशी की बाढ़ को राष्ट्रीय आपदा घोषित करना पड़ा। बिहार सरकार ने बाढ़ के वक्त 9,000 करोड़ रुपए के नुकसान का अंदाजा लगाया। केंद्र सरकार की तरफ से भेजे गए टास्क फोर्स ने 16 सितंबर 2008 को 25,000 करोड़ रुपए के नुकसान की बात कही। बिहार सरकार ने पुनर्निर्माण के लिए 14,500 करोड़ रुपए की मांग की। कई संगठनों का कहना है कि नुकसान एक लाख करोड़ रुपए से ऊपर का हुआ है। जबकि केंद्र सरकार ने मात्र एक हजार करोड़ रुपए ही दिए हैं।

18 अगस्त के बाद 24 दिन तक लगातार पानी फैलता रहा। खबर आती रही कि आज यह इलाका डूब गया है तो आज अमुक इलाके में पानी भर गया है। कोशी का पानी रेल पटरियों और सड़कों से टकराता रहा, उन्हें तोड़ता रहा और इलाके-दर-इलाके इसकी चपेट में आते रहे।

बाढ़ की वजह से हजारों पशु मर गए। तालाब बह गए, जिनके साथ मछलियां मर गईं। इससे लाखों लोगों के रोजगार पर असर पड़ा। इस हालत में लोग आखिर क्या करते? तकरीबन 12 लाख लोग बिहार से पलायन कर गए। विनाश के बीच सरकार को जैसे लकवा मार गया। करीब दो हफ्तों तक बाढ़ पीड़ित इलाकों में सरकार का कहीं नामों-निशां नहीं था। सरकार ने बाद में दावा किया कि उसने साढ़े छह लाख लोगों को राहत शिविरों में पनाह दी। लेकिन सवाल है कि जब बाढ़ की विपत्ति 30 लाख लोगों पर टूटी थी तो बाकी लोगों के साथ क्या हुआ, इसकी खबर उसके पास क्यों नहीं थी? विपक्ष को जरूर बाढ़ में अपना राजनीतिक फायदा नजर आया और तत्कालीन रेल मंत्री लालू प्रसाद यादव ने 160 मुफ्त रेल गाड़ियां चलवा दीं। इससे बाढ़ पीड़ित लोग उस इलाके से बाहर जा सके। बहुत से लोगों ने ट्रेनों के डिब्बों में ही कई हफ्तों तक पनाह ले रखी थी। जब बाढ़ उफान पर थी, तो बहुत से लोगों ने पेड़ों की टहनियों से लटक कर अपनी जान

बचाई। कई-कई दिन तक लोग भूखे प्यासे उस हाल में रहे, या फिर जान बचाने की जुगत में लगे रहे।

विपत्ति के उन दिनों में लोगों का कोई सहारा था, वे खुद या उनका समाज था। एक दूसरे की मदद का ही आसरा था। जिन लोगों ने पलायन किया उनमें से बहुत से लोग साल भर बाद तक नहीं लौटे। वे फोन से अपने घर-गांव की खबर लेते, लेकिन यह जान कर कि लौटने के बाद जिंदगी बसर होना मुश्किल है, वापसी का इरादा छोड़ देते थे।

बाढ़ से नुकसान के जो आंकड़े सामने आए, उसमें वह नुकसान शामिल नहीं है, जो बाढ़ के दीर्घकालिक असर से होगा। कई जानकारों ने कहा है कि बाढ़ की वजह से खेत लंबे समय तक बंजर बने रहेंगे, जिससे लोगों को बदहाली का सामना करना पड़ेगा। बाढ़ के साथ आई रेत और गाद खेतों में जम गई। साथ ही इनकी वजह से सिंचाई के लिए पानी पहुंचाने के मकसद से बनाए गए रास्ते जाम हो गए। साफ है, इसका असर लंबे समय तक दिखता रहेगा।

कोशी ने एक बार फिर अपना खौफनाक रूप दिखा दिया था। लेकिन दुर्भाग्य की बात यह कि इस तबाही में भी सरकारें और राजनीतिक दल अपने तुच्छ स्वार्थों से ऊपर नहीं उठ पाए। प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह पूर्णिया पहुंचे, तो राष्ट्रीय आपदा की बात कह गए। लेकिन जब सामाजिक कार्यकर्ताओं ने केंद्र सरकार के अधिकारियों से बात की तो उन्हें बताया गया कि राष्ट्रीय आपदा जैसी कोई चर्चा दिल्ली में नहीं है। तो क्या बिहार के लाखों बाढ़ पीड़ितों के साथ धोखा हुआ?

क्यों बरपा कहर?

अगस्त 2008 में नदी की धारा इतनी तेज नहीं थी। इसके बावजूद भारी तबाही हुई। वजह थी नेपाल में कुसहा तटबंध का टूटना। इससे वहां जमा पानी तेजी से बह निकला। और नेपाल की तराई में मौजूद सुनसरी जिले से लेकर बिहार में सुपौल, मधेपुरा, सहरसा, अररिया, पूर्णिया, खगड़िया, कटिहार और नवगछिया आदि जैसे जिलों पर विपत्ति टूट पड़ी। नेपाल में पचास हजार लोग इस बाढ़ से प्रभावित हुए।

इस बाढ़ ने तटबंधों की उपयोगिता को चर्चा के केंद्र में ला दिया। इसलिए भी कि तटबंध उस वक्त टूटा, जब नदी में पानी का बहाव अगस्त के औसत बहाव से कम था। इसीलिए अनेक जानकारों की राय है कि 2008 में कोशी की बाढ़ से हुई तबाही की वजह मानसून में आने वाली बाढ़ नहीं थी। कुदरत को इसके लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता।

यहां यह भी गौरतलब है कि 2008 के अगस्त के पहले पखवाड़े में कोशी के जलग्रहण क्षेत्र में मौजूद पहाड़ियों पर हुई बारिश सामान्य से कम थी। इन जानकारों का कहना है कि अगर तटबंध टूटने के समय कोशी में जल प्रवाह ऐतिहासिक रूप से सबसे ज्यादा होता, तो और भी भयानक तबाही देखने को मिलती। तटबंध टूटने के दिन कोशी में जल प्रवाह 1968 में दर्ज सर्वोच्च स्तर का तकरीबन छठवां हिस्सा ही था। जब तटबंध टूटा तो नदी का पानी पुराने रास्तों से बहने लगा, प्रवाह जिधर आसानी से मुड सकता था मुड गया, और निचले इलाके डूब गए। *(राजीव सिन्हा, ईपीडब्लू, 15 नवंबर 2008)*

तटबंध टूटने के समय दो असामान्य घटनाएं देखी गईं। पहली यह कि नदी अपनी मौजूदा धारा से पूरब की तरफ मुड़ी, जबकि पिछले दो सौ साल से इसका रुझान पश्चिम की तरफ मुड़ने का रहा है। और दूसरी असामान्य घटना यह दिखी कि नदी की धारा ने करीब 120 किलोमीटर की दिशा बदली। यह किसी एक मौके पर धारा के इतनी दिशा बदल लेने का रिकॉर्ड है।

बाद में सामने आए तथ्यों से यह जाहिर हुआ कि कुसहा के आसपास पूर्वी तटबंध पिछले कुछ वर्षों से दबाव में था। बल्कि उपग्रह से हासिल तस्वीरों से साफ होता है कि नदी कम से कम 1979 से पूरब की तरफ मुड़ रही थी। 5 अगस्त 2008 को कुसहा तटबंध में दरार पड़ती नजर आई। अगर उसी वक्त जरूरी कदम उठा लिए गए होते, तो शायद इस विपत्ति से लाखों लोग बच जाते।

वैसे यह आठवां मौका था, जब कोशी के पूर्वी तटबंध में दरार पड़ी। हां, ऐसा पहली बार हुआ, जब बैराज के ऊपर तटबंध टूटा। 1968, 1984 और 1987 में पूर्वी तटबंध में पड़ी दरारें कम घातक नहीं थीं। तब भी बड़ी संख्या में लोगों को बाढ़ का कहर झेलना पड़ा था। ये तटबंध 1963 में बन कर तैयार हुए थे, यानी अब 46 वर्ष से ज्यादा पुराने हो चुके हैं। ऐसे में जानकारों की राय है कि इनमें दरार पड़ना आश्चर्यजनक नहीं है।
(राजीव सिन्हा, ईपीडब्लू, 15 नवंबर 2008)

तटबंध बनने के साथ ही कोशी नदी के पूरब में मौजूद इलाके में सड़कें, नहर, रेल लाइनें आदि बना दी गईं। इससे नदी से पानी बहने के पुराने कुदरती रास्ते बंद हो गए। नदी बेसिन में अवरोध खड़े हो गए। पानी का बहाव नियंत्रित करने के लिए नदी पर बैराज बनाया गया। इससे नदी के ऊपरी बहाव स्थल पर गाद जमा होने लगी और कोशी नदी अपने ऊपरी इलाके में अस्थिर रूप से बहने लगी।

उपरोक्त तथ्यों की रोशनी में यह बात साफ कही जा सकती है कि कोशी ने अगस्त 2008 में जो तबाही मचाई, उसकी परिस्थितियां इंसान ने ही पैदा की थीं। तटबंध से बाढ़ रोकने की नीति से लेकर धरती के गर्म होने की वजह से हो रहा जलवायु परिवर्तन- इसके कारणों में शामिल हैं। दोहराव के बावजूद इन दो तथ्यों पर गौर किए जाने की जरूरत है- धरती के गर्म होने की वजह से ग्लेशियर पिघल रहे हैं और इसका असर नदियों से लेकर पूरे वातावरण पर पड़ रहा है। प्रकृति को टेक्नोलॉजी से जीत लेने का अंधविश्वास तटबंध पर अंधआस्था के रूप में सामने आया है, और इसका परिणाम अब भुगतना पड़ रहा है।

इस संदर्भ में कुछ बातें गौरतलब हैं: 1- कोशी बैराज की वजह से सिंचाई की सुविधा तो मिली, लेकिन बहुत कम इलाके में। 2- इस परियोजना से जितनी बिजली मिलने का वादा किया गया था, उतनी बिजली कभी उपलब्ध नहीं हुई। नहर में बड़ी मात्रा में गाद जमा होने से बिजली संयंत्र संकट का शिकार हो गया। 3- कोशी परियोजना की बाढ़ नियंत्रण की क्षमता पर भी सवाल लगातार गहरा होता गया है। एक बड़ा इलाका तटबंध के दायरे से बाहर पड़ता है और उस इलाके को इस परियोजना से कोई सुरक्षा मिली है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। अगस्त 2008 में तटबंध में दरार पड़ने से बाढ़ सुरक्षा का दावा और कमजोर साबित हो गया है।

अब ऐसी आम धारणा बन गई है कि पचास साल में तटबंधों में आठ बार दरार पड़ने के बावजूद कोई सबक नहीं सीखा गया है। इसकी एक मिसाल अक्टूबर 2008 में जल संसाधन के बारे में भारत-नेपाल की एक उच्चस्तरीय कमेटी की बैठक है। इस बैठक के बाद जारी विज्ञप्ति में बिहार में बाढ़ नियंत्रण के लिए सप्त कोशी परियोजना पर अमल के ऊपर खास जोर दिया गया। लेकिन इसमें दरार पड़ने की घटनाओं और अभी दो महीने पहले ही मची तबाही के बावजूद बैराज एवं तटबंधों के जरिए बाढ़ रोकने के तरीके पर पुनर्विचार की कोई जरूरत महसूस नहीं की गई।

अध्याय-3 बांध और तटबंध हैं उपाय?

कोशी बाढ़ नियंत्रण पर कुछ आधारभूत विवाद

बात आगे बढ़ाने से पहले सप्त कोशी बहुद्देश्यीय परियोजना पर एक सरसरी नजर डाल लेना उचित होगा। इस परियोजना पर भारत और नेपाल लंबे समय से विचार-विमर्श करते रहे हैं। परियोजना का मकसद बाढ़ नियंत्रण, सिंचाई, पनबिजली पैदा करना और नौवहन (navigation) बताए गए हैं। प्रस्तावित बांध त्रिवेणी और चतरा के बीच के पहाड़ी इलाके में मौजूद बराहक्षेत्र में बनना था। बांध की संभाव्यता (feasibility) रिपोर्ट 1953 में तैयार की गई थी। लेकिन तब ज्यादा लागत के अनुमान की वजह से बांध का निर्माण छोड़ दिया गया। तब इसकी जगह नेपाल के इलाके में बैराज बनाया गया और साथ ही नदी के दोनों किनारों पर तटबंध बनाए गए।

1953 में भयंकर बाढ़ आई थी। उसी से बने माहौल के बीच 1954 में कोशी परियोजना की रूपरेखा बनी। इस परियोजना के तहत ये निर्माण होने थे: 1- भीमनगर में एक बैराज, 2- बैराज के नीचे नदी के दोनों किनारों पर तटबंध, 3- पूर्वी और पश्चिमी दिशाओं में नहर, 4- पूर्वी नहर पर पनबिजली संयंत्र, और 5- बराहक्षेत्र में एक बड़ा बांध। शुरुआत में इस परियोजना का मकसद बाढ़ नियंत्रण और सिंचाई की सुविधाएं देना बताया गया। परियोजना पर काम 1959 में शुरू हुआ और 1963 में बैराज के जरिए नदी की दिशा बदल दी गई। बराहक्षेत्र में प्रस्तावित बांध को छोड़ कर परियोजना के तहत होने वाले बाकी सभी निर्माण या तो पूरे हो चुके हैं या उन पर काम चल रहा है।
(राजीव सिन्हा, ईपीडब्लू, 15 नवंबर 2008)

भारत सरकार ने 1981 में बराहक्षेत्र में बांध की संभावना पर फिर से हुए अध्ययन की रिपोर्ट जारी की, जिसमें सुझाव दिया गया कि बांध की ऊंचाई 269 मीटर रखी जाए। 1984 में एक जापानी कंपनी की मदद से फिर से इस परियोजना की पड़ताल की गई, जबकि उसी साल नेपाल सरकार ने कोशी बेसिन मास्टर प्लान बनाया। 1997 नेपाल और भारत सरकार के विशेषज्ञों की एक बैठक के बाद सहमति बनी कि कोशी बांध के बारे में साझा अध्ययन किया जाए। इस सारी चर्चा का सार तत्व यह था कि कोशी पर बांध बनाना ही कोशी नदी की बाढ़ को नियंत्रित करने का कारगर तरीका है, तटबंध सिर्फ इसके फौरी उपाय हैं।

सरकारी चर्चाओं में जब कभी बिहार में बाढ़ रोकने पर चर्चा हुई है, अक्सर बड़े बांध ही उपाय बताए गए हैं। कहा गया है कि मुख्य और उनकी सहायक नदियों के बहाव के पहाड़ी और ऊपरी हिस्सों में बांध बनाए जाने चाहिए। चूंकि बिहार में बहने वाली ज्यादातर नदियां नेपाल से आती हैं, इसलिए बांध नेपाल की जमीन पर ही बन सकते हैं और इसीलिए अक्सर भारत सरकार की चर्चाओं में इस संबंध में नेपाल का सहयोग जरूरी बताया जाता है। यह अनुमान जताया गया है कि कोशी नदी पर बराहक्षेत्र में प्रस्तावित बांध से 42,475 क्यूबिक मीटर प्रति सेकंड तक बहाव वाली बाढ़ के असर को कम किया जा सकेगा। साथ ही बांध गाद को रोक लेगा, जिससे नीचे नदी का बहाव ज्यादा स्थिर हो सकेगा।

लेकिन यह परियोजना तभी हकीकत में बदल सकती है, जब नेपाल सरकार का सहयोग मिले। यानी नेपाल सरकार अपनी धरती पर बांध और उससे जुड़े सभी निर्माण पर राजी हो। जब तक नेपाल में राजंतत्र था, नेपाल की तरफ से भारतीय परियोजनाओं में ज्यादा रुकावट नहीं आती थी। लेकिन अब हालात बदल गए हैं। अगस्त 2008 की बाढ़ के समय जिस तरह कोशी परियोजना का विरोध नेपाली मीडिया में हुआ, उसे देखते हुए यह नहीं लगता कि आगे नदी परियोजनाओं को कार्यरूप देना आसान है। नेपाल की जो भी सरकार इस दिशा में कदम उठाएगी, उसे भारत का पिट्ठू या भारत के आगे घुटना टेकने वाली सरकार बता दिया जाएगा।

वैसे सवाल सिर्फ नेपाल के पहलू का ही नहीं है। उससे बड़ा सवाल यह है कि जिस माध्यम से बाढ़ को नियंत्रित करने का सपना देखा गया है, क्या अब भी उसकी वकालत की जा सकती है। तटबंध के जरिए बिहार को कोशी के कोप से नहीं बचाया जा सका। सरकारें भले अब भी इसी माध्यम पर भरोसा करती हों, लेकिन यह साफ है कि ऐसा वो बांध और तटबंधों से जुड़े जोखिम की अनदेखी करते हुए ही कर रही हैं। उन्होंने बड़े बांध से बनने वाले जलाशय में गाद जमा होने से जुड़े खतरों पर ध्यान नहीं दिया है। भूकम्प की स्थिति में हो सकने वाले विनाश पर भी उन्होंने गौर नहीं किया है। बांधों से जुड़े पर्यावरणीय सवालों पर उन्होंने नहीं सोचा है। भारत में टिहरी और सरदार सरोवर बांधों के सिलसिले में इन सभी मुद्दों और खतरों पर खूब चर्चा हुई है। इस बारे में आज पर्याप्त अध्ययन और जानकारी उपलब्ध है। सवाल यह है कि क्या कोशी या नेपाल से आने वाली किसी दूसरी नदी पर बांध या तटबंध बनाने की योजना बनाते वक्त इन अध्ययनों और जानकारियों की उपेक्षा वाजिब और भावी पीढ़ियों के हित में है?

कोशी परियोजना के तहत बैराज के नीचे नदी के दोनों किनारों पर बनाए गए तटबंधों का मकसद उत्तर बिहार और नेपाल में 2800 वर्ग किलोमीटर इलाके को बाढ़ से बचाना बताया गया था। परियोजना को अपने बाकी उद्देश्यों में कितनी सफलता मिली, इस पर बहस हो सकती है, लेकिन यह तो साफ है कि बाढ़ से बचाव के मकसद में कामयाबी नहीं मिली। तटबंध बनने के बाद भी भयंकर बाढ़ें आती रहीं। तटबंधों में दरार का पड़ना जारी रहा। इसके अलावा पानी निकलने के रास्तों के जाम हो जाने और खेतों में पानी जमा होने जैसे इसके दूसरे दुष्प्रभाव भी सामने आए। नदी का तल पहले से ऊंचा हो गया और नदी के पानी के साथ उपजाऊ मिट्टी के कम आने की वजह से खेतों में पैदावार भी घटी। कहने का तात्पर्य यह है कि तटबंधों से बाढ़ की समस्या का हल नहीं निकला, बल्कि इनकी वजह से कई दूसरी समस्याएं सामने आ गईं।

अगर कोशी परियोजना के पूरे इतिहास को ध्यान में रखें, खासकर तटबंधों में बार-बार हुई टूट को तो यह नहीं लगता कि 18 अगस्त 2008 को कुसहा तटबंध में पड़ी दरार कोई अनोखी घटना थी। तटबंध टूटने के बाद 80 से 85 फीसदी पानी नदी के सामान्य रास्ते से अलग पूर्वी दिशा में बह निकला। ज्यादा पानी आने से नदी की चौड़ाई बढ़ती गई। एक हफ्ते बाद यह चौड़ाई 22 किलोमीटर थी और बाद के हफ्तों में यह 35 किलोमीटर तक हो गई। जैसाकि हमने पहले भी कहा है कि कुसहा में तटबंध का टूटना उसके पहले नदी के दोनों तरफ तटबंधों में पड़ी दरारों से दो मायने में अलग था। पहला यह कि 200 साल के रुझान से उलट इस बार नदी पूरब की तरफ चल पड़ी और दूसरा यह कि इसने 120 किलोमीटर दिशा बदली, जो एक रिकॉर्ड है।

क्या इसकी वजह यह थी कि नदी के कुदरती प्रवाह में इंसान के दखल की इंतहा गई है? नदी का पूरब की तरफ जाना, और वह भी 120 किलोमीटर बदलाव के साथ- यह इस बात का संकेत हो सकता है कि नदी के पश्चिम की तरफ जाने की गुंजाइश खत्म हो चुकी होगी। ज्यादातर जानकार इस बात से सहमत हैं कि तटबंधों में कोशी को बांधने से स्थिति और बदतर हुई। इससे नदी के बहाव में बदलाव आया। बैराज के नीचे के कई इलाकों से पहले नदी के तल के ऊंचा होते जाने की खबरें मिलती रही थीं। इससे निकली नहरों और पानी बहने के दूसरे रास्तों में गाद के जमा होने के निशान पहले ही दिख रहे थे। बैराज के ऊपर के इलाकों में भी ऐसा होने के निशान दिखते रहे हैं।

कोशी में बाढ़ पहले भी आती थी, लेकिन उपरोक्त तथ्यों की रोशनी में यह जरूर कहा जा सकता है कि 2008 में आई बाढ़ के पीछे इंसानी हस्तक्षेप भी एक वजह थी। इस बाढ़ ने हमें बताया कि बाढ़ नियंत्रण के जो तरीके हम सोच और अपना रहे हैं, वो पुराने पड़ चुके

हैं। अब वह समय आ गया है, जब इन तरीकों पर पुनर्विचार किया जाए और नए तरीके सोचे जाएं।

अगर उत्तर बिहार पर गौर करें तो वहां बाढ़ नियंत्रण के लिए तटबंधों पर सबसे ज्यादा भरोसा किया गया है। उत्तर बिहार में तटबंधों की लंबाई 3,400 किलोमीटर से ज्यादा है। इनमें से ज्यादातर तटबंध 1954 की भयंकर बाढ़ के बाद बनाए गए। इस तटबंधों की मौजूदगी के बावजूद उत्तर बिहार में बाढ़ आती रही है- कभी नदी में तटबंधों की ऊंचाई से ज्यादा पानी भर जाने की वजह से, तो कभी तटबंधों में दरार पड़ जाने की वजह से।

बागमती नदी बेसिन में बाढ़ नियंत्रण के उपाय 1942 में शुरू हुए। तब से 466 किलोमीटर से ज्यादा तटबंध बनाए गए हैं। शुरुआत में नदी के निचले इलाके (डाउनस्ट्रीम) में तटबंध कारगर रहे। लेकिन जब ऊपरी इलाके (अपस्ट्रीम) में तटबंध बनाए गए, तो निचले इलाकों में बाढ़ आने की घटनाएं बढ़ गईं और तटबंधों में भी बार-बार दरार पड़ने लगी। इस रूप में कहा जा सकता है कि तटबंधों ने सिर्फ इस समस्या से प्रभावित होने की जगह बदल दी है। तटबंध नदी के कुदरती प्रवाह में हस्तक्षेप करते हैं। इनकी वजह से जो इलाके बाढ़ से बच भी जाते हैं, वहां पानी और गाद जमा होने जैसी दूसरी मुश्किलें पेश आने लगती हैं। असल में तटबंधों से बाढ़ रोकने की रणनीति पर अब अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सवाल उठाए जा रहे हैं। अमेरिका और चीन में भी तटबंध बाढ़ से राहत दिलाने में नाकाम रहे हैं। *(जियोग्रैफी एंड यू, जुलाई-अगस्त 2008)*

पूर्वी-पश्चिमी कोशी तटबंधों के बीच रह रहे लोगों की त्रासदी

कोशी का तटबंध टूटने से इतनी बर्बादी झेल चुकने के बाद भी यह सवाल आखिर क्यों नहीं उठाया जाता कि अगर कुसहा तटबंध नहीं टूटता तो पानी आखिर कहां जाता? जानकारों के मुताबिक तब पानी उस रास्ते से जाता, जिसे 1950-60 के दशक में तटबंधों से रोक दिया गया था। इन तटबंधों के बीच भारत में 386 और नेपाल में 34 गांव बसे हैं। भारत में करीब दस लाख और नेपाल में डेढ़ लाख की आबादी वहां रहती है। अगर तटबंध नहीं टूटता तो दुर्भाग्य से तटबंधों के बीच बसे ये लोग ही तबाही का शिकार होते। पानी इन्हीं गांवों से होकर बहता। यानी तटबंध टूटें या नहीं, इंसानों के किसी न किसी हिस्से पर इनकी वजह से आपदा जरूर आएगी।

तटबंधों ने जैसी परिस्थिति खड़ी की है, उसे समझने के लिए उस कमेटी पर भी गौर करना चाहिए, जो तटबंधों के बीच फंसे लोगों की दुर्दशा पर विचार करने के लिए बनाई

गई थी। चंद्रकिशोर पाठक की अध्यक्षता में बनी कमेटी ने तटबंधों के बीच रह रहे लोगों के आर्थिक पुनर्वास और उनके विकास के लिए एक प्राधिकरण बनाने की सिफारिश की थी। 1987 में कोशी पीड़ित विकास प्राधिकरण का गठन हुआ। इस संबंध में अपने संदेश में बिहार के तत्कालीन मुख्यमंत्री बिंदेश्वरी दुबे ने कहा था- "कोशी तटबंधों के बनने के बाद से लाखों लोगों ने अनकही पीड़ा झेली है। देश में शायद ही कोई और ऐसी जगह हो, जहां इतने सारे लोग नदी की धारा के सामने रहते हों। अपने दुर्भाग्य से पीछा छुड़ाने की कोशिश करते-करते इन लोगों ने अब अपनी उम्मीद खो दी है।" लेकिन वह प्राधिकरण भी इन लोगों के दुख-दर्द दूर नहीं कर सका।

दरअसल, तटबंध कोशी बेसिन के बाशिंदों के गले में लिपटे सांप की तरह बन गए हैं। अगर ये तटबंध सलामत रहते हैं, तो तटबंधों के बीच रहने वाली 12 लाख की आबादी की परेशानी की वजह बनते हैं, और अगर ये टूट जाते हैं तो इनके बाहर रहने वाली पांच लाख से लेकर 30 लाख तक की आबादी पर कहर टूट पड़ता है। तटबंध टूटने की हालत में कितनी आबादी बाढ़ की चपेट में आएगी, यह इससे तय होता है कि नदी कौन से रास्ते अपना लेती है। लेकिन बर्बादी तो हर हाल में होती है।

अध्याय-4 बाढ़ की समस्या और राजकाज की चुनौतियां

अगर हाल के अनुभव देखे जाएं तो कहा जा सकता है कि भारत में सरकारें अभी ऐसी किसी नई पहल के प्रति जागरूक नहीं हैं। पर्यावरण में आते बदलाव से नदी का व्यवहार बदल सकता है, या तटबंध बनाने जैसे जो उपाय किए हैं, वो कभी धोखा दे सकते हैं, इन बातों का अहसास सरकारी हलकों में नजर नहीं आता। इसलिए पहले से कोई एहतियात नहीं बरती जाती। अगस्त 2008 में जब कोशी में बाढ़ आई तो ऐसे इलाके भी डूब गए, जहां काफी समय से बाढ़ का पानी नहीं पहुंचा था। अचानक आई बाढ़ से वहां के लोग सकते में रह गए। उनके पास न तो बचाव का कोई उपाय था, और ऐसी परिस्थिति से निपटने की कोई तैयारी थी। उन लाखों लोगों ने इसे तकदीर की मार समझ कर संतोष कर लिया।

लेकिन असल में यह सरकारी लापरवाही थी। इससे यह साफ हुआ कि बड़े बांध और तटबंधों को बनाने के लिए विज्ञान और आधुनिक आविष्कारों की दलील देने वाली सरकारें बाढ़ का पूर्व अनुमान लगाने और पीड़ितों के बचाव के लिए कुशल व्यवस्था करने की कोई तैयारी नहीं करतीं। इन मामलों में वे सब कुछ कुदरत पर छोड़ देती हैं। कुदरत से छेड़छाड़ कर वो उसका कोप भुगतने के लिए आम लोगों को असहाय छोड़ देती हैं। यही उत्तर बिहार में दशकों से हो रहा है। कोशी की बाढ़ से शोर खूब मचा। लेकिन इन हालात में कोई बदलाव होगा, ऐसी कोई उम्मीद नहीं दिखती।

सामाजिक कार्यकर्ताओं और पीड़ित लोगों के संवाद से यह बात भी साफ होती है कि राजनीतिक दल लोगों की दुर्दशा के लिए सीधे जिम्मेदार हैं। उनके निहित स्वार्थ और गलत फैसलो का नतीजा आम लोगों को भुगतना पड़ता है। राज्य और केंद्र- दोनों ही सरकारों के कर्ताधर्ताओं से अब सीधा सवाल है कि बाढ़ से बचाव के लिए उन्हें तटबंध के अलावा कोई और उपाय क्यों नहीं सूझता? कोशी की बाढ़ के बाद राजनीतिक नेताओं ने भोलेपन का मुखौटा पहनते हुए दलील दी कि जब नदी ने अपनी दिशा ही बदल ली तो प्रशासन क्या कर सकता था? लेकिन उन्होंने यह बताने की जरूरत नहीं समझी कि जब नदी की धारा को नियंत्रित करने के लिए तटबंध बनाए गए थे, तो उसके बावजूद नदी की दिशा कैसे बदल गई?

सच्चाई यह है कि तटबंधों के रखरखाव, उनकी ऊंचाई बढ़ाने, उन्हें मजबूत करने और नए तटबंध बनाने के नाम पर लगभग हर साल बड़े पैमाने पर सरकारी पैसा आता है, जिसका फायदा राजनीतिक दलों से जुड़े ठेकेदार और दलाल उठाते हैं। ये ठेकेदार और

दलाल चुनाव के वक्त पर नेताओं के काम आते हैं। इसलिए नेता चाहे किसी पार्टी का हो, वह ठेकेदारों और दलालों के हितों पर चोट करने की हिम्मत नहीं जुटा पाता। संभवतः इसी वजह से नेता बाढ़ रोकने की अब तक अपनाई गई नीति पर उठाए जाने वाले हर सवाल को नजरअंदाज कर देते हैं।

यहां तक कि इस बारे में राष्ट्रीय बाढ़ आयोग की टिप्पणियों की भी अनदेखी कर दी गई। आयोग ने ध्यान दिलाया था कि तटबंधों की उपयोगिता का कोई व्यवस्थित अध्ययन नहीं किया गया है। सामाजिक कार्यकर्ताओं की यह पुरानी शिकायत रही है। उनकी मान्यता है कि कभी अपने समाज की सामाजिक-आर्थिक स्थितियों के मुताबिक बाढ़ रोकने के उपायों की प्रभावशीलता का सर्वे नहीं किया गया। ना ही कभी आम लोगों को इस प्रक्रिया से जोड़ने की कोशिश की गई। जबकि 2004 में बाढ़ प्रबंधन एवं भू-क्षरण नियंत्रण के बारे में प्रधानमंत्री के टास्क फोर्स ने तटबंधों के रखरखाव में सामुदायिक भागीदारी को बढ़ावा देने की सिफारिश की थी।

जनता से कट कर और निहित स्वार्थों के असर में बनाई जाने वाली नीतियों का ही यह परिणाम है कि तटबंधों के दुष्परिणाम जग-जाहिर हो जाने के बावजूद सरकारी स्तर पर इन पर आज भी कोई सवाल नहीं उठाया गया है। हकीकत यह है कि सरकारी स्तर पर तटबंधों को लेकर जो विचार 1950 के दशक में मौजूद थे, वे ही आज तक प्रचलित हैं। तब माना जाता था कि तटबंधों और ऊंचे बांधों के जरिए बाढ़ को रोका जा सकता है। वह आधुनिक तकनीक और बड़े निर्माणों पर आधारित विकास नीति में पूरे भरोसे का दौर था।

लेकिन 1980 का दशक आते-आते विशेषज्ञ इस नीति पर सवाल उठाने लगे थे। उत्तर बिहार के संदर्भ में उन्होंने ध्यान दिलाया कि वहां बाढ़ रोकने के लिए हिमालय से निकलने वाली नदियों पर बांध को उपाय माना गया, जिसके तहत बड़े जलाशय बना कर नीचे ज्यादा पानी उतरने से रोकने की बात सोची गई। लेकिन विशेषज्ञों ने कहा कि उस इलाके की भूगर्भीय और भूकंपीय स्थितियों की वजह से ये बांध बड़ा खतरा पैदा कर सकते हैं। फिर संकरी घाटी की वजह से विशाल जलाशय बनाना शायद संभव भी नहीं है और नदियों में आने वाली गाद जलाशयों के दीर्घकालिक और आर्थिक फायदे को और सीमित कर देती हैं।

लेकिन इन सब बातों का सरकारों की सोच पर कोई असर नहीं हुआ। 2007 में बिहार सरकार ने बाढ़ नियंत्रण योजना के लिए केंद्र सरकार से 17 हजार करोड़ रुपए से ज्यादा

की विशेष सहायता मांगी। कहा गया कि यह रकम तटबंधों और नदियों से गाद निकालने पर खर्च किया जाएगा। उधर केंद्र में राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन सरकार अपने कार्यकाल में विभिन्न नदियों को जोड़ कर बाढ़ और सूखे का हल निकालने की योजना लेकर आई थी। इस योजना में बिहार की भी कई नदियों को शामिल किया जाना था।

विशेषज्ञों ने ध्यान दिलाया कि अगर नदियों को जोड़ने की योजना लागू की गई तो इससे पर्यावरण को अपूरणीय क्षति पहुंचेगी। नदियों को जोड़ने की योजना इस सोच पर आधारित थी कि बाढ़ नदियों के ऊपरी जलग्रहण क्षेत्र में ज्यादा बारिश से आती है। ऐसे में ज्यादा पानी को बड़े बांधों के जरिए रोक कर उसे उन इलाकों में पहुंचाया जा सकता है, जहां पानी की कमी है। साथ ही इकट्ठा पानी से बिजली भी पैदा की जा सकेगी।

इस योजना ने बस यही साबित किया कि हमारे राजनीतिक नेतृत्व ने अतीत की भूलों से कुछ नहीं सीखा है। उसे न तो बड़ी परियोजनाओं से होने वाले विस्थापन और विस्थापितों की पीड़ा से कोई हमदर्दी है, और ना ही इन परियोजनाओं से पर्यावरण को पहुंचने वाले स्थायी नुकसान की कोई चिंता है। कई जानकारों ने ध्यान दिलाया था कि नदियों के कुदरती रूप को बदलने और कृत्रिम नदियों या नहरों का जाल बिछाने की योजना सारा प्राकृतिक संतुलन बिगाड़ देगी, जिसके परिणामस्वरूप में प्रकृति का कोप आने वाली पीढ़ियों को झेलना पड़ सकता है। लेकिन अक्सर ऐसी समझ का उन लोगों में अभाव होता है, जिनकी निगाह सिर्फ स्वार्थ और फौरी फायदे पर होती है।

केंद्रीय जल संसाधन मंत्रालय के तहत काम करने वाले केंद्रीय जल आयोग का दावा है कि देश में बाढ़ के खतरे वाले कुल इलाके में तीन चौथाई से भी ज्यादा को बाढ़ से बचाने के इंतजाम आज मौजूद हैं। इसके बावजूद हर साल बाढ़ से तबाही होती है। जाहिर है, किसी भी बाढ़ प्रभावित इलाके में जाकर ऐसे दावों की असलियत आसानी से देखी जाती है। फिर भी ऐसे इंतजामों पर जनता का धन खर्च करने या कहें बर्बाद करने का सिलसिला जारी है। इस संबंध में जवाबदेही तय करने की कोई कोशिश कहीं होती नजर नहीं आती।

सरकारें बाढ़ जैसी आपदाओं को लेकर कितनी गंभीर हैं, इसकी पोल इससे भी खुल जाती है कि खुद सरकारी आयोगों, कमेटियों और टास्क फोर्सों ने जो सिफारिशें की हैं, उन पर कभी ठीक से अमल नहीं किया गया। खुद केंद्रीय जल आयोग ने 2005-06 की अपनी सालाना रिपोर्ट में कहा था कि विभिन्न आयोगों, कमेटियों और टास्क फोर्सों की सिफारिशों पर अमल की दिशा में ज्यादा प्रगति नहीं हुई है। यानी सरकारें पुराने अनुभव

से सीख लेने को तो तैयार नहीं ही हैं, वह पुराने ढांचे में सुझाए जाने वाले उपायों को लेकर भी गंभीर नहीं हैं। इसीलिए सभी बाढ़ प्रभावित इलाकों के लोग मानव निर्मित संकट को भुगतने के लिए मजबूर हैं।

नेपाल का पहलू

कोशी की बाढ़ ने एक तरफ भारी तबाही मचाई तो दूसरी तरफ इसकी वजह से भारत और नेपाल के संबंधों का एक पेच भी उभर कर सामने आ गया। नेपाल में भारत पर विस्तारवादी रवैया अपनाने का आरोप लगाने वाली ताकतों को इससे अपनी मुहिम तेज करने का एक और मौका मिला। निशाने पर आया 1954 का कोशी समझौता। नेपाल की भारत विरोधी ताकतों का आरोप है कि यह समझौता असमान शर्तों पर हुआ था। इसी समझौते के तहत सीमा पर बैराज बना। यह नेपाल की जमीन पर बना। जबकि आरोप है कि बैराज का 96 फीसदी फायदा भारत को मिला। नेपाल को सिर्फ चार फीसदी लाभ मिला। 2008 की बाढ़ के समय नेपाली अखबारों में इस विषय की काफी चर्चा रही।

वहां छपे लेखों में कहा गया कि कोशी परियोजना मुख्य रूप से बाढ़ नियंत्रण की परियोजना है, यह सिंचाई परियोजना नहीं है। नेपाल को सिंचाई का कुछ लाभ जरूर मिला, लेकिन इसकी वजह से वहां बाढ़ का खतरा बढ़ गया। इस परियोजना से नेपाल को होने वाले कथित नुकसानों की चर्चा वहां खूब बढ़ा-चढ़ा कर की गई और कोशी समझौते पर पुनर्विचार की मांग जोरदार ढंग से उठाई गई। कई टीकाकारों ने इस समझौते को नेपाल के लिए राष्ट्रघाती बताया। राजनीतिक विश्लेषक श्याम श्रेष्ठ ने लिखा- इस समझौते से नेपाल को नुकसान के अलावा और कुछ नहीं हुआ। नेपाल की जमीन पर बांध बनाने में स्वामित्व नेपाल का होना चाहिए। लेकिन कोशी परियोजना के संचालन पर पूरा हक भारत का है। यानी इस समझौते से नेपाल की संप्रभुता में भारत का हस्तक्षेप सुनिश्चित हुआ है। इसलिए असमान एवं राष्ट्रघाती चरित्र वाले कोशी समझौते का पुनरावलोकन जरूर होना चाहिए। ऐसे ही विचार कई दूसरे लोगों ने भी जताए।

कई जानकार यह मानते हैं कि कोशी नदी के दो देशों में बहने और कोशी परियोजना में दो देशों के शामिल होने की वजह से आपदा रोकने के उपाय कारगर ढंग से नहीं किए जा सके हैं। इस पहलू की अगस्त 2008 की बर्बादी में एक खास भूमिका रही। जल संसाधन विशेषज्ञ अजय दीक्षित ने इस बात का जिक्र किया है कि 1966 की संशोधित कोशी संधि में परियोजना के रखरखाव एवं इससे संबंधित अन्य कार्यों की जिम्मेदारी भारत को दी गई। नेपाल सरकार अपनी सभी सड़कों, जल मार्गों, तथा परिवहन और

संचार के दूसरे रास्तों के इस्तेमाल का हक भारत को देने पर राजी हो गई, ताकि भारत बैराज और दूसरे संबंधित निर्माण एवं रखरखाव की जिम्मेदारी निभा सके। लेकिन दीक्षित का कहना है कि यह संधि बैराज और तटबंधों के नियमित रखरखाव के बारे में अस्पष्ट है। संधि में नेपाल को संचालन एवं प्रबंधन संबंधी कोई जिम्मेदारी नहीं दी गई है, जबकि बैराज के ऊपर नदी नेपाल में ही बहती है।

जानकारों का कहना है कि नेपाल में राजनीतिक बदलाव की चल रही प्रक्रिया ने हालात को और उलझा दिया है। राजतंत्र का खात्मा, संविधान सभा के चुनाव और उसके बाद माओवादियों एवं दूसरे राजनीतिक दलो के बीच बढ़ते टकराव ने भारत-नेपाल संधि को एक ज्यादा ज्वलंत राजनीतिक मुद्दा बना दिया। नेपाल की राजनीति में भारत विरोध की एक धारा लंबे समय से मौजूद रही है। अगस्त 2008 में भारत विरोधी ताकतों ने यह बात जोरशोर से उछाली कि संधि से नेपाल को सिर्फ क्षति ही हुई है। इस तरफ ध्यान खींचा गया कि कोशी परियोजना से जो फायदे होने की बात कही गई थी, वे नहीं हुए या जितना फायदा बताया गया था, उसकी तुलना में बहुत कम फायदे हुए।

अध्याय-5 समस्या का हल

मुद्दा यह है कि उत्तर बिहार के लोगों को हर साल बाढ़ की विपत्ति झेलने से कैसे बचाया जाए। इस संबंध में कई मांगें उठी हैं, जिन्हें ठोस रूप में अब पेश किया जा सकता है।

तात्कालिक हल

यह तो साफ है कि कुसहा की घटना से अगर कोई सीख नहीं ली गई तो फिर लोगों को बाढ़ जैसी आपदाओं से बचाने की बात सोचना भी शायद मुश्किल है। सबसे पहली जरूरत यह है कि बन चुके तटबंधों का उचित रखरखाव हो और उनकी लगातार निगरानी की जाए। अगर इनमें कहीं दरार पड़ती है और उसे भरने के फौरी उपाय नहीं किए जाते हैं, तो उसके लिए कौन जवाबदेह होगा, यह पहले से तय किया जाए।

तात्कालिक मुद्दे आपदा की स्थितियों में बचाव और राहत से संबंधित हैं। कोशी इलाके में हुए अनुभवों के आधार पर सामाजिक कार्यकर्ताओं ने कुछ खास मांगें रखीं। ये मांगें अभी भी प्रासंगिक हैं और मौजूदा हालात को देखते हुए कहा जा सकता है कि आने वाले वर्षों में भी रहेंगी। इनके मुताबिक,

- केंद्र सरकार एक राष्ट्रीय आपदा राहत कानून बनाए। इसमें किसी परिस्थिति को राष्ट्रीय आपदा घोषित किए जाने के प्रावधानों को स्पष्ट किया जाए। राष्ट्रीय आपदा घोषित होने के बाद केंद्र और राज्यों की क्या जवाबदेही बन जाती है, इसे भी बिल्कुल साफ किया जाना चाहिए। यानी यह बात स्पष्ट होनी चाहिए कि कितनी गंभीर स्थिति होने पर उसे राष्ट्रीय आपदा माना जाएगा और उस हालत में राहत के क्या कदम उठाए जाएंगे।
- बिहार सरकार अपनी राहत नियमावली को दुरुस्त करे।
- अगस्त 2008 में आई बाढ़ के लिए कौन जिम्मेदार है, इसकी पहचान की जाने की जरूरत बनी हुई है। इसके लिए तब से कई जन संगठन सीबीआई जांच की मांग उठाते रहे हैं। दरअसल, यह मांग उस इलाके में जन आंदोलन की एक महत्त्वपूर्ण मांग है।
- आगे तटबंध बनें या नहीं या मौजूदा तटबंधों के बारे में क्या रुख अपनाया जाए, यह सवाल भी बेहद महत्त्वपूर्ण है। लेकिन फौरी तौर पर सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि मौजूद तटबंधों के न टूटने की गारंटी की जाए। इसके लिए मरम्मत और निगरानी की विशेष व्यवस्था की जाए। साथ ही स्पष्ट रूप से यह तय किया जाए

कि अगर किसी तटबंध में दरार पड़ती है तो यह किसकी जवाबदेही होगी। तटबंध टूटने के लिए जिम्मेदार लोगों तो सजा देने के लिए कानून बनाया जाए।

- तटबंधों की मरम्मत का काम हर हाल में हर साल अप्रैल तक पूरा कर लिया जाए। ऐसा अनुभव है कि इसके बाद होने वाले मरम्मत के काम पर भ्रष्टाचार हावी रहता है। काम सिर्फ कागज पर होता है औऱ बताए गए निर्माण को बाढ़ में बह गया बता दिया जाता है।
- बाढ़ से हुए नुकसान का अंदाजा लगाने के लिए एक स्वतंत्र आयोग का गठन हो।
- अगस्त 2008 की बाढ़ से जिन आठ जिलों में जान-माल, घरेलू सामान, पशुपालन, रोजगार, उद्योग-धंधों, बाग-बगीचों, पोखर-तालाब आदि का नुकसान हुआ, पीड़ितों को सरकार उनका पूरा मुआवाजा दे।
- अगस्त 2008 बाढ़ से क्षतिग्रस्त सड़कों, नालों, रेल पटरी, स्कूल, अस्पताल, डाकघर, खेल के मैदान, चरागाह, सामुदायिक भवन आदि का पुनर्निर्माण जल्द से जल्द कराया जाए।
- भविष्य की किसी बाढ़ से निपटने की पूर्व तैयारी की जाए। बाढ़ के पानी को रोकने के लिए जलाशय बनाए जाएं, टीलों पर राहत केंद्र बनाने की तैयारी रहे, नावों का खास इंतजाम हो, जिससे फंसे लोगों को राहत शिविरों तक पहुंचाया जा सके।
- प्रभावित गांवों में हर 1000 की आबादी पर कम से कम 20 नावों का इंतजाम हो, प्रति परिवार के लिए 100 किलोग्राम अनाज की व्यवस्था पहले से रहे और विस्थापन के दौरान लोगों बसाने की योजना पहले से तैयार रहे। जहां लोगों को ठहराया जाए, वहां पानी और शौचालय का समुचित इंतजाम रहना चाहिए।
- पीड़ित गांवों के लोगों को राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना के तहत लगातार रोजगार दिया जाए, ताकि लोग पलायन न करें और जो लोग पलायन कर गए हैं, वे वापस आ सकें।
- जब तक किसान मजदूरों के लिए जीविकोपार्जन के वैकल्पिक साधन उपलब्ध न हो जाएं, विशेष राहत कार्यों को जारी रखा जाए।
- खेतों में रेत भरने की वजह से खेती और पशुपालन पर बहुत बुरा असर पड़ा है। सरकार रेत हटाने के लिए ठोस इंतजाम करे।
- इन इलाकों के लिए विशेष एवं नए कर्ज की व्यवस्था की जाए।

- पिछले पांच दशकों के अनुभवों के आधार पर तटबंधों के फायदे और नुकसानों का संपूर्ण आकलन किया जाए। साथ ही तटबंधों की वजह से प्रभावित परिवारों को हुए चल एवं अचल संपत्ति के नुकसान के बदले उन्हें मुआवजा दिया जाए।

इसके अलावा जन संगठनों ने कुछ अन्य मांगें भी उठाई हैं, मसलन,

- बाढ़ प्रभावित गांवों में आपदा की चेतावनी की व्यवस्था की जाए।
- एक आपदा प्रबंधन प्राधिकार बनाया जाए, जो बाढ़ प्रबंधन में हुई गलतियों पर फौरन कार्रवाई करे और तय के कायदों के मुताबिक राहत सामग्री का वितरण सुनिश्चित करे। आपदा प्रबंधन पर सरकारी एजेंसियों के बजट व खर्चों में पारदर्शियता सुनिश्चित करने की जिम्मेदारी भी इस प्राधिकार को सौंपी जानी चाहिए।

राहत औऱ बचाव से संबंधित इन मांगों के अलावा जन संगठनों ने कोशी नदी की बाढ़ की मारक क्षमता को कम करने के लिए भी कुछ सुझाव दिए हैं। इन सुझावों को मांग के रूप में पेश किया जा सकता है और इनके इर्द-गिर्द जन गोलबंदी की जा सकती है। मसलन,

- कोशी नदी के पानी का गंगा में सहज प्रवाह सुनिश्चित करने के लिए मनिहारी से कुरसेला औऱ फरक्का से नौगछिया तक गंगा नदी में भरी हुई रेत को निकाला जाए।
- जल निकासी पर खास ध्यान दिया जाए। एनएच 31, एनएच 57, एनएच 106 और रेल खंड बरौनी-कटिहार, मानसी-दरभंगा वाया समस्तीपुर, पूर्णिया-सहरसा से फारबिसगंज, सहरसा से मानसी, दरभंगा से निर्मली, फारबिसगंज से जोगबनी रेलखंडों में जल निकासी का खास इंतजाम पुलिया बनाए कर किए जाएं।
- दोनों कोशी तटबंधों के बीच बन रहे एनएच 57 तथा रेल पुलियों की चौड़ाई दो किलोमीटर से बढ़ा कर आठ-नौ किलोमीटर की जाए ताकि तटबंधों के पास के करीब पचास हजार परिवारों को विस्थापन से बचाया जा सके। अगर ऐसा नही होता है तो विस्थापित होने वाले परिवारों की पूरी जायदाद का मुआवजा देकर उनका उचित पुनर्वास किया जाए।

दीर्घकालिक हल

कहा जाता है कि इंसान अपनी गलतियों से सीखता है। सभ्यता के इतने विकास के बावजूद मनुष्य अभी सीखने के ही दौर में है। बड़ी परियोजनाओं से बाढ़ पर नियंत्रण का एक प्रयोग मनुष्य ने पिछली सदी में किया। लेकिन वक्त ने साबित किया कि वह प्रयोग न सिर्फ अधूरा था, बल्कि उसके कई दुष्परिणाम भी हुए। खासकर प्रकृति के लिए कई विनाशकारी नतीजे सामने आए। इनसे सीखते हुए प्रकृति पर विजय पाने की महत्वाकांक्षा और उसके लिए बनाई नीतियों पर सवाल उठने लगे। पिछली सदी में जो उपाय और तरीके प्रचलन में आए, आज उन पर गंभीर सवाल हैं। इसलिए अब वैकल्पिक तरीकों और उपायों पर सोचा जा रहा है। दुर्भाग्यपूर्ण यह है कि जिनके हाथ में सत्ता और प्रयोग के संसाधन हैं, वो अभी तक नहीं जागे हैं।

इसलिए सक्रिय समूहों की तरफ से आए सुझावों पर गौर करना बाढ़ नियंत्रण के लिए फिलहाल काफी महत्वपूर्ण है- तात्कालिक मुद्दे तय करने के लिए भी और दीर्घकालिक संघर्ष की रणनीति बनाने के लिए भी।

असली सवाल दीर्घकालिक हल निकालने का है। बाढ़ एक समस्या है। इससे ही मुक्ति दिलाने के लिए बांध और तटबंध बनाए गए। लेकिन पिछले पांच दशकों का अनुभव यह है कि बांधों और तटबंधों ने बाढ़ से बचाव तो नहीं किया, बल्कि कई नई समस्याएं खड़ी कर दीं। बहरहाल, बांधों और तटबंधों का अस्तित्व का भी अब एक हकीकत है। सबसे अहम सवाल यह है कि इन ठोस परिस्थितियों के बीच ऐसे क्या दीर्घकालिक या टिकाऊ महत्त्व के मुद्दे हो सकते हैं, जिन्हें केंद्र में रख कर कोशी इलाके में जन राजनीति आगे बढ़ाई जा सकती है।

इस संदर्भ में यह गौरतलब है कि बाढ़ को परंपरागत रूप से ज्यादा बारिश से जोड़ कर देखा जाता रहा है। बाढ़ नियंत्रण को इंजीनियरों का क्षेत्र समझा जाता रहा है। इसी समझ के आधार पर बाढ़ प्रबंधन का मतलब नदी को नियंत्रित करना माना जाता है। लेकिन अब बहुत से जानकार यह स्वीकार कर रहे हैं कि ऐसी ही समझ की वजह से दुनिया भर में बाढ़ प्रबंधन की कोशिशें नाकाम रहीं।

इसे आंक़ड़ों से साबित किया जा सकता है कि बाढ़ पर काबू पाने के तमाम उपायों के बावजूद भारत में बाढ़ प्रभावित इलाके और बाढ़ से होने वाले नुकसान- दोनों में बढ़ोतरी हुई है। बाढ़ आज देश, खासकर उत्तर बिहार में सबसे ज्यादा नुकसान पहुंचाने वाली प्राकृतिक आपदा है। इसलिए अब बाढ़ नियंत्रण के उपायों पर सोच बदलने की जरूरत है। अब वैकल्पिक सोच अपनाए जाने की आवश्यकता है। जानकार अब नदियों का स्वभाव

समझने और उसके मुताबिक भूमि एवं जल प्रबंधन के उपाय करने की जरूरत पर जोर दे रहे हैं।

लेकिन मौजूदा राजनीतिक माहौल में क्या यह संभव है?

तटबंधों के जरिए बाढ़ रोकने की कोशिश चूंकि दुनिया भर में नाकाम हो चुकी है, इसलिए अब इसके वैकल्पिक तरीके विकसित करने के प्रयास हो रहे हैं। बांग्लादेश में छोटी सिंचाई योजनाओं के जरिए हुई ऐसी कोशिश को काफी सफल बताया जा रहा है। गंगा बाढ़ नियंत्रण आयोग ने उत्तर बिहार के बागमती बेसिन के सिलसिले में ऐसे कुछ उपाय सुझाए हैं। इनमें नदी के ऊपरी बहाव इलाके में मौजूद बेलवा गांव में छोटा बांध बनाना शामिल है। साथ ही जल मार्ग में सुधार, वाटरशेड मैनेजमेंट, भूमिगत जलाशय बनाने जैसे उपायों के भी सुझाव दिए गए हैं। बहरहाल, ये सारे उपाय अभी विचार के स्तर पर ही हैं, और इनसे निकट भविष्य में लोगों को राहत मिलने की आशा नहीं की जा सकती।

तो आखिर अब तक के अनुभवों से क्या सीख ली जाए? जानकारों का कहना है कि सबसे पहले हमें अपना नजरिया बदलने की जरूरत है। हमें नदी 'नदी के नियंत्रण' की रणनीति छोड़नी चाहिए और 'नदी प्रबंधन' के तरीकों पर सोचना चाहिए। हमें नदी बेसिन प्रबंधन की योजना बनाने पर विचार करना चाहिए। इसके लिए यह समझना जरूरी है कि नदी के बनने और सदियों से उसके कायम रहने की प्रक्रियाएं क्या रही हैं, जल संचय कैसे होता है और कैसे नदी में आने वाले अतिरिक्त पानी का बेहतर इस्तेमाल किया जा सकता है। दुनिया भर में अब बाढ़ प्रबंधन के बारे में विचार करते हुए इस पर सोचा जा रहा है कि क्या आने वाले अतिरिक्त पानी का छोटी सिंचाई योजनाओं में उपयोग संभव है और अगर ऐसा है तो इसके लिए क्या उपाय करने होंगे।

जानकारों के मुताबिक बाढ़ से विनाश को रोकने के लिए यह जरूरी है कि नदी बेसिन में, जहां बाढ़ आने का खतरा रहता है, उनके बेहतर नक्शे तैयार किए जाएं और बाढ़ आ जाने के बाद निर्णय लेने की प्रक्रिया को सुगम और सक्षम बनाया जाए। परंपरागत रूप से ऐसे नक्शे जमीनी सर्वे और हवाई सर्वेक्षण के आधार पर तैयार किए जाते हैं। लेकिन अब इन्हें पुराना तरीका माना जाता है। उनके मुताबिक इन तरीकों से नक्शा बनाने में जरूरत से ज्यादा समय लगता है और यह महंगा भी पड़ता है। साथ ही सही वक्त पर हवाई सर्वेक्षण संभव नहीं हो पाता, क्योंकि मौसम के मिजाज का पहले से अंदाजा लगा पाना मुश्किल होता है।

विशेषज्ञों की राय है कि अगर भौगोलिक सूचना प्रणाली (जी आई एस), रिमोट सेसिंग इमेजेज, जनसंख्या संबंधी आंकड़े और संबंधित जगहों के नक्शों का इस्तेमाल कर बाढ़ के खतरे वाले क्षेत्रों का नक्शा बनाया जाए, तो बाढ़ के प्रबंधन में वह ज्यादा सहायक होगा। साथ ही इसमें अब नदियों के जल ग्रहण क्षेत्रों में जंगल की कटाई, बारिश के इतिहास, तटबंध टूटने की घटनाओं के इतिहास आदि के पूरे आंकड़ों के इस्तेमाल पर भी जोर दिया जाता है।

इसलिए जानकारों के मुताबिक कुछ फौरी तकनीकी उपाय जरूर किए जाने चाहिए। उनके मुताबिक-

1- गाद नदियों की एक बड़ी समस्या बन गई है। ज्यादातर गाद अपस्ट्रीम बेसिन इलाके से आती है। इसकी वजह से नदी का जल मार्ग भरने लगता है और नदी में पानी इकट्ठा होने की क्षमता घट जाती है। जाहिर है, गाद बाढ़ की एक बड़ी वजह है। जानकारों का कहना है कि अगर नदी बेसिन इलाके में पेड़ लगा कर वाटरशेट मैनेजमेंट किया जाए तो नदी में गाद जमा होने की प्रक्रिया घट सकती है, जिससे अंततः बाढ़ का खतरा घटेगा।
2- अब सहायक नदियों के द्वार पर तथा नदी बेसिन इलाके में छोटे जलाशय और चेक डैम बनाने को बाढ़ रोकने का प्रभावी उपाय माना जा रहा है। इससे सहायक नदियों से आने वाले पानी को नियंत्रित किया जा सकता है, जिससे मुख्य नदी में बाढ़ आने का खतरा घटेगा। चेक डैम छोटे आकार के होते हैं, इसलिए इनसे पर्यावरण को नुकसान नहीं पहुंचता, साथ ही इन पर लागत भी कम आती है।
3- सुझाए जा रहे कुछ अन्य उपाय इस प्रकार हैं- अतिरिक्त पानी को नहरों से दूसरी जगहों तक पहुंचाना, नदी के अपस्ट्रीम में जलाशय बनाना, नदी बेसिन इलाके में पानी जमा कर रखने के उपाय करना, कृत्रिम रूप से जमीन से नीचे के पानी को निकालना ताकि बाढ़ से आने वाले पानी को जमीन सोख ले, वगैरह।

ये दूरगामी वैकल्पिक उपाय हैं। इन पर सहमति बनाने और इन्हें अमली जामा पहनाने में अभी वक्त लगेगा।

बाढ़ पर बाढ़ मुक्ति अभियान के संयोजक और विशेषज्ञ दिनेश कुमार मिश्र की यह राय -

बिहार में बाढ़ की समस्या के संदर्भ में बाढ़ मुक्ति अभियान के संयोजक दिनेश कुमार मिश्र की यह टिप्पणी गौरतलब है- "बिहार की बाढ़ की समस्या के मूल में पानी की निकासी और बाढ़ के पानी के साथ आने वाली गाद है। तटबंध समस्या को बढ़ाते हैं, उसका समाधान नहीं करते। चर्चाओं के माध्यम से अगर यह बात लोक मान्य हो जाती है तो इसे एक न एक दिन राज्य मान्य होना ही पड़ेगा।" जाहिर है, इस राय से सहमत लोग चाहते हैं कि तटबंधों की अनुपयोगिता को राजनीति का मुद्दा बनाया जाए।

दिनेश कुमार मिश्र के मुताबिक तकनीकी उपायों की अपनी सीमाएं हैं, इसलिए जरूरत स्थानीय लोगों से पारंपरिक ज्ञान अर्जित कर उसे आधुनिक विज्ञान से संवारने की है। शायद इसी से कोई टिकाऊ समाधान निकल सकता है। उत्तर बिहार के संदर्भ में हमारी राजनीतिक और भौगोलिक परिस्थिति ऐसी है कि हम न तो पानी और गाद को आने से रोक सकते हैं और ना ही नदी के बारे में कोई स्वतंत्र निर्णय ले सकते हैं। अगर आपको सिर्फ नदी का एक टुकड़ा ही उपलब्ध हो तो आधी इंजीनियरिंग वहीं खत्म हो जाती है। बची आधी इंजीनियरिंग की भी अपनी सीमाएं हैं।

बाढ़ से निपटने के लिए हम क्या-क्या कर सकते हैं, यह दिवा स्वप्न देखने और दिखाने से पहले हमें यह तय करना होगा कि कौन-कौन सी चीजें ऐसी हैं, जो हम नहीं कर सकते। इन चीजों पर एक नजर डालें: 1- यह सारी बहस इसलिए चल रही है कि तटबंधों पर जो हमने विश्वास किया, वह गलत था। 2- बराहक्षेत्र बांध का निर्माण हमारे हाथ में नहीं है। 3- कोशी नदी की उगाढ़ी संभव नहीं है, क्योंकि एक तो गाद/ रेत की मात्रा वहां बहुत अधिक है और उसे कहां फेंका जाएगा, यह किसी को मालूम नहीं है। इस प्रस्ताव को इंजीनियर लोग भी सिरे से खारिज करते हैं। 4- गांवों को ऊंचा करने का काम 1950 और 1960 के दशक में मुख्यतः उत्तर प्रदेश और कुछ अन्य राज्यों में किया गया औऱ भारी जन प्रतिरोध के बीच उसे अव्यावहारिक मान कर छोड़ दिया गया। 5- नदी को मुक्त छोड़ कर गांवों को घेरने की योजना भी भीषण समस्याओं से ग्रस्त है। बिहार में ही निर्मली, महादेव मठ और बैरगनियां की समस्याएं किसी से छिपी नहीं हैं। 6- नदियों को आपस में जोड़ने की योजना कम से कम बिहार में पूरी तरह नेपाल पर आश्रित है और वहां भी लंबा इंतजार करना होगा। जब तक नेपाल और इस योजना के लिए कर्ज या अनुदान देने वाली संस्थाएं इसके परिणामों को लेकर पूरी तरह आश्वस्त नहीं होंगी, तब तक यह काम नहीं होगा। 7- इन सारे तकनीकी उपायों के बाद एक कानूनी रास्ता बचता

है, जिसके मुताबिक बाढ़ वाले इलाकों में रिहाइश के नियम और निषेधों को कड़ाई से लागू किया जाए। इसे तकनीकी भाषा में फ्लड प्लेन जोनिंग कहते हैं। बिहार में दो तिहाई जमीन पर बाढ़ की आशंका बनी रहती है और वहां इस तरह के कानून का पालन संभव नहीं है, क्योंकि तब वहां ऐसा बहुत कम क्षेत्र बचेगा, जहां कोई बड़ा निर्माण कार्य किया जा सके। यह मान कर कि फ्लड प्लेन जोनिंग कानून मान लेने से बिहार में विकास के सारे काम बाधित हो जाएंगे, खुद बिहार सरकार ने इसे खारिज किया हुआ है। क्योंकि नदी की पूरी लंबाई हमारे पास उपलब्ध नहीं है। उसका अच्छा-खासा हिस्सा नेपाल में पड़ता है और वहां कुछ करने के लिए नेपाल की रजामंदी चाहिए। वह मिल सकती है और नहीं भी मिल सकती है या बहुत देर से मिल सकती है। भलाई इसी में है कि हम वार्ताएं जरूर चलाएं, लेकिन उन्हीं के भरोसे बैठे ना रहें।

इस तरह हम देखते हैं कि बाढ़ से निपटने वाली सारी योजनाओं के रास्ते या तो बंद हैं या वे किसी अंधी गली में जाकर खत्म हो जाते हैं। तब बचता है एकमात्र रास्ता कि स्थानीय स्तर पर ही बाढ़ से निपटा जाए।

अध्याय-6 कैसे होगी जनता की राजनीति

बहरहाल, अगस्त 2008 में आई बाढ़ खतरे की ऐसी घंटी है, जिसकी अनदेखी बड़े विनाश का जोखिम उठाते हुए ही की जा सकती है। हमारे राजनेता यह जोखिम उठाने को भी तैयार दिखते हैं, क्योंकि आखिरकार जान-माल का नुकसान उनका नहीं, बल्कि आम जनता का होगा। इसलिए यह आम जनता के जागने का वक्त है। यह सामाजिक संगठनों के जागने का वक्त है। अगर वे मिलजुल कर बाढ़ और इससे जुड़ी भुखमरी को राजनीतिक मुद्दा बना सकें, इसे चुनाव हारने और जीतने का सवाल बना सकें तो शायद तस्वीर कुछ बदल सकती है। यानी बाढ़ पर राजनीति का वक्त आ गया है, नेताओं के बीच राजनीति का नहीं, बल्कि नेताओं के खिलाफ जनता की राजनीति का।

लेकिन अहम सवाल यह है कि यह राजनीति कौन करेगा और इसके मुद्दे क्या होंगे? कुसहा तटबंध टूटने के बाद कोशी में जब बाढ़ आई और उससे भारी विनाश हुआ तो इसने बहुत से जन संगठनों, सामाजिक कार्यकर्ताओं और आम लोगों की संवेदना को झकझोरा। कई स्वयंसेवी समूह और जन संगठन राहत कार्यों के लिए प्रभावित इलाकों में पीड़ित लोगों के बीच गए। उन्होंने इस विनाश के कारणों को समझने की कोशिश की। साथ ही उस इलाके के लोग जिस भंवर में फंस गए हैं, उससे उन्हें निकालने के उपायों पर भी चर्चा की। उनकी चर्चा से कई महत्त्वपूर्ण सुझाव सामने आए हैं। इन पर और चर्चा की जरूरत है और अगर इन पर एक व्यापक सहमति बन सके, तो वह निश्चित रूप से कोशी बाढ़ से प्रभावित इलाकों में जनता की राजनीति के मुद्दे तय हो सकते हैं।